के Life member- बीस वर्ष तक कालिज की सेवा-मा० रानाडे का उन पर प्रभाव- बम्बई प्रान्तिक कान्फरेंस के मन्त्री-वेलबी कमीशन के आगे उनकी गवाही-पूना की प्लेग में लोगों की सेवा-बम्बई कौंसल के सभासद्--बड़ी कौंसल के सभासद्-पूना कांग्रेस के मन्त्री-विलायत डेपूटेशन के सदस्य-बनारस कांग्रेस के सभापति-सरवेण्ट आफ इण्डिया सोसाइटी का खोलना- दक्षिण अफ्रीका की यात्रा-पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्य-मृत्यु मृत्यु से शोक--स्मारक स्थापना।

महाराणा प्रतापसिंह।

प्रारम्भिक-जन्म उस समय देश की दशा उदयसिंह का राज्य-अकबर की हमला-उदयसिंह का भागना-चित्तौड़ पर अकबर का अधिकार-उदयसिंह का मृत्यु-उस समय की दशा-प्रताप का चित्तौड़ विजय के लिये प्रण-कमलमीर में रहना-सलीम की मेवाड़ पर चढ़ाई हल्दी घाटी की लड़ाई-प्रताप का भाग जाना-शक्तिसिंह का प्रताप को मुगलों से बचाना-चेतक की मृत्यु कमलमीर में फिर सेना इकट्ठा करना-युद्ध होकर कमलमीर पर मुगलों का अधिकार-प्रताप का गुप्त रह कर इधर उधर भागना-प्रताप का अकबर की सन्धि के लिये पत्र-पृथ्वीराज का पत्र द्वारा उसे रोकना-भामाशाह की सम्पत्ति से फिर सेना इकट्ठी कर लड़ना-चित्तौड़ के बिना सभी भूमि छीनना-मृत्यु-अवसान।

ग्रामोफोन।

प्रारम्भिक इतिहास-एडीसन की तार की खबरों के स्वयं लिखे जाने के विषय में खोज-इसी अन्तर में उसे शब्द की गति का पता

लगना-उसके लिए एक यन्त्र बनाना शब्द का दूसरी वस्तु पर प्रभाव-शब्द का धक्के से चूड़ा पर चिन्ह करना-इस आविष्कार से संसार में ग्रामोफोनों में दिनों दिन उन्नति नलियों के स्थान में भोंपू का उपयोग इसके भिन्न २ प्रयोग-श्रवणयान।

व्योमयान।

पुरातन ग्रन्थों में इनका ज़िक्र-पहले पहल अमरीका में तजुरबा लैन्थल राइट की सफलता-फिर अमरीका में वाइरप्लेन बनना-भिन्न २ देशों में इसमें बैठकर लोगों का उड़ना-पहले की अपेक्षा गति का बढ़ जाना-इसके चलने के भौतिक नियम-वायु से हलका होने के कारण इस का उड़ना-इसमें इञ्जनों का प्रयोग-इसमें भिन्न २ यन्त्र-इसके प्रकार-इन से हानि।

आलू की खेती।

पहले अमरीका में ही होते थे-वालटरेल इङ्गलेंड में लाए-इनकी उपयोगिता और प्रचार-बोने की ऋतु-बोने के नियम-इन के बीज-इन का निरीक्षण-इन से आमदनी।

सर आइज़क न्यूटन।

जन्म-पिता का देहान्त क्रीड़ाप्रिय थे-पाठशाला को छोड़कर खेती का काम-शिक्षा में प्रवृत्ति-वैज्ञानिक आविष्कार में प्रवृत्ति-जलघड़ी बनाना-धूपघड़ी बनाना-केम्ब्रिज में शिक्षा पाना-गणित में पंडित होना-गणित में नये सिद्धान्तों का आविष्कार करना-नक्षत्रों की गति के विषय में आविष्कार-रोशनी के विषय में आविष्कार-ट्रिनिटी कालिज में गणिता-ध्यापक बनना-जिस काम में लगते उसी में मग्न होजाते-प्रिंसिपिया लि-

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ।

रेशम और रेशम के कीड़े ।

एक्स किरण ।

महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य।

ब्रिटिश पार्लिमेण्ट।

कुछ दिन बाद नवजात¹ बालक को छोड़ स्वर्ग सिधार गई। राज्य भर में अब उत्सव के स्थान में शोकान्धकार छा गया। तदनन्तर सिद्धार्थ का पालन पोषण माया देवी की बहिन महाप्रजापति को करना पड़ा।

जब सिद्धार्थ कुछ बड़ा हुआ तो उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। उसकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि थोड़े ही समय में वह बहुत सी विद्या पढ़ गया। एक दिन वह कहीं जा रहा था तो उसने सांप को पक्षी खाते और पक्षियों को च्यूंटियां खाते देखा। यह देखते ही उसके चित्त में विचार हुआ कि जगत् के जीव बड़े स्वार्थी हैं, अपना पेट भरने के लिए वह क्या २ बुरे काम नहीं करते। बस इसी विचार में, मग्न उस ने वहीं बैठे घंटे बिता दिए। निरन्तर ऐसे विचारों में डूबे रहने से उसकी चित्तवृत्ति ऐसी हो गई कि जब कभी वह किसी को दुःखी देखता तो आप भी दुःखित हो जाता। बाल्यावस्था में ही सिद्धार्थ के मन की यह दशा देख उसका पिता मन ही मन विचारने लगा कि यदि सिद्धार्थ की यही दशा रही तो वह राज्य का काम कैसे चलायेगा। यह विचार राजकुमार को सांसारिक भोगों में फंसाने के लिए उसने कई प्रकार के भोग विलास की सामग्री इकट्ठी की। इसके सिवाय और भी अनेक यत्न किए परन्तु सिद्धार्थ के चित्त को कोई भी न डिगा सका। अन्त में निराश हो उसके पिता ने उसको विवाह के बंधन में डालना चाहा। सोलह वर्ष की आयु के सिद्धार्थ का विवाह यशोधरा राजकुमारी से हो गया। गृहस्थ के धंधों में पड़कर सिद्धार्थ के मन में कुछ परिवर्तन होता दिखाई दिया। यह देख शुद्धोदन तथा ... मंत्री बड़े प्रसन्न हुए, किंतु अभी थोड़े ही दिन बीतने पाए ... फिर वैसा ही उदास दीखने लगा। उसे सदा यही

¹ नवजात, नया पैदा हुआ।

मान होता कि इस पृथिवीपर कोई मनुष्य सुखी नहीं। देखने में यदि कोई सुखी मालूम भी होता है तो वास्तव में वह भी दुःखी है।

जब सिद्धार्थ उनतीस वर्ष का हुआ तो एक दिन बाज़ार में घूमते २ उसने एक ऐसे वृद्ध पुरुष को देखा जिस के सब दांत गिर गये थे केश श्वेत हो चुके थे सभी अंग कांप रहे थे, लाठी के आश्रय भी उसके लिए चलना कठिन था। इसे देख सिद्धार्थ ने सारथी से पूछा इसकी ऐसी दशा क्यों हो गई है। इस पर सारथी ने उत्तर दिया 'महाराज! जो कोई इस आयु तक पहुंचेगा उसकी यही दशा हो जायेगी"। यह सुनते ही सिद्धार्थ तुरन्त उलटे पांव लौट आया और रात दिन इसी चिंता में मग्न रहने लगा। उसके चित्त में यही जम गया कि संसार असार है। राजकुमार जब दूसरे और तीसरे दिन फिर घूमने को निकला तो उसे मुर्दे दिखाई पड़े। इस लिए उसका संसार की असारता-विषयक निश्चय और भी दृढ़ हो गया। चौथीवार उसे गेरुए वस्त्र धारण किए हुए एक भिक्षुक मिला। सिद्धार्थ के पूछने पर उसने कहा कि "मैं ने संसार को तुच्छ समझ छोड़ दिया। भिक्षा मांग कर अपना उदरपूरण करता हूं और शेष समय संसार के उपकार में लगाता हूं" सिद्धार्थ का मन डगमगा तो रहा ही था अतः उस पर भिक्षु के उपदेश का बड़ा असर हुआ और उसके मन में संसार को त्याग कर भिक्षु बनने की प्रबल कामना उत्पन्न हो गई। उसी रात्रि को घर से निकल जाने की ठान ली। जब चलने लगा तो स्त्री और पुत्र के स्नेह से विवश हो उन्हें देखने गया। जा कर देखा कि यशोधरा बड़े आनन्द से सो रही है। उस का सुकुमार पुत्र सोये सोये ही उसके स्तनों से दुग्ध पान कर

कुछ दिन बाद नवजात[1] बालक को छोड़ स्वर्ग सिधार गईं। राज्य भर में अब उत्सव के स्थान में शोकान्धकार छा गया। तदनन्तर सिद्धार्थ का पालन पोषण माया देवी की बहिन महाप्रजापति को करना पड़ा।

जब सिद्धार्थ कुछ बड़ा हुआ तो उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। उसकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि थोड़े ही समय में वह बहुत सी विद्या पढ़ गया। एक दिन वह कहीं जा रहा था तो उसने सांप को पक्षी खाते और पक्षियों को च्यूंटियां खाते देखा। यह देखते ही उसके चित्त में विचार हुआ कि जगत् के जीव बड़े स्वार्थी हैं, अपना पेट भरने के लिए वह क्या २ बुरे काम नहीं करते। बस इसी विचार में, मग्न उस ने वहीं बैठे घंटे बिता दिए। निरन्तर ऐसे विचारों में डूबे रहने से उसकी चित्तवृत्ति ऐसी हो गई कि जब कभी वह किसी को दुःखी देखता तो आप भी दुःखित हो जाता। बाल्यावस्था में ही सिद्धार्थ के मन की यह दशा देख उसका पिता मन ही मन विचारने लगा कि यदि सिद्धार्थ की यही दशा रही तो वह राज्य का काम कैसे चलायेगा। यह विचार राजकुमार को सांसारिक भोगों में फंसाने के लिए उसने कई प्रकार के भोग विलास की सामग्री इकट्ठी की। इसके सिवाय और भी अनेक यत्न किए परन्तु सिद्धार्थ के चित्त को कोई भी न डिगा सका। अन्त में निराश हो उसके पिता ने उसको विवाह के बंधन में डालना चाहा। सोलह वर्ष की आयु के सिद्धार्थ का विवाह यशोधरा राजकुमारी से हो गया। गृहस्थ के धंधों में पड़कर सिद्धार्थ के मन में कुछ परिवर्तन होता दिखाई दिया। यह देख शुद्धोदन तथा उसके मंत्री बड़े प्रसन्न हुए, किंतु अभी थोड़े ही दिन बीतने पाए थे कि वह फिर वैसा ही उदास दीखने लगा। उसे सदा यही

१ नव-जात, नया पैदा हुआ।

भान होता कि इस पृथिवीपर कोई मनुष्य सुखी नहीं। देखने में यदि कोई सुखी मालूम भी होता है तो वास्तव में वह भी दुःखी है।

जब सिद्धार्थ उनतीस वर्ष का हुआ तो एक दिन बाज़ार में घूमते २ उसने एक ऐसे वृद्ध पुरुष को देखा जिस के सब दांत गिर गये थे, केश श्वेत हो चुके थे सभी अंग कांप रहे थे, लाठी के आश्रय भी उसके लिए चलना कठिन था। इसे देख सिद्धार्थ ने सारथी से पूछा, इसकी ऐसी दशा क्यों हो गई है। इस पर सारथी ने उत्तर दिया ' महाराज ! जो कोई इस आयु तक पहुंचेगा उसकी यही दशा हो जावेगी"। यह सुनते ही सिद्धार्थ तुरत उलटे पांव लौट आया और रात दिन इसी चिंता में मग्न रहने लगा। उसके चित्त में यही जम गया कि संसार असार है। राजकुमार जब दूसरे और तीसरे दिन फिर घूमने को निकला तो उसे मुर्दे दिखाई पड़े। इस लिए उसका संसार की असारता-विषयक निश्चय और भी दृढ़ हो गया। चौथीबार उसे गेरुए वस्त्र धारण किए हुए एक भिक्षुक मिला। सिद्धार्थ के पूछने पर उसने कहा कि "मैं ने संसार को तुच्छ समझ छोड़ दिया। भिक्षा मांग कर अपना उदरपूरण करता हूं और शेष समय संसार के उपकार में लगाता हूं" सिद्धार्थ का मन डगमगा तो रहा ही था अतः उस पर भिक्षु के उपदेश का बड़ा असर हुआ और उसके मन में संसार को त्याग कर भिक्षु बनने की प्रबल कामना उत्पन्न हो गई। उसी रात्रि को घर से निकल जाने की ठान ली। जब चलने लगा तो स्त्री और पुत्र के स्नेह से विवश हो उन्हें देखने गया। जा कर देखा कि यशोधरा बड़े आनन्द से सो रही है। उस का सुकुमार पुत्र गोदमें सोये हो उसके स्तनों से दुग्ध पान कर

रहा है और कुछ दासियां इधर उधर सोई पड़ी हैं। सिद्धार्थ ने अन्तिम वार पुत्र का मुख-चुम्बन किया। स्नेह-पूर्ण नेत्रों से यशोधरा की ओर देखा और घर को छोड़ जंगल की राह ली। चलने से पूर्व उसने सारथी छन्द से घोड़ा जुतवा लिया और उस पर सवार हो नगर से भाग निकला।

सिद्धार्थ को छोड़ कर छन्द ने कपिलवस्तु में पहुंच कर सारा समाचार राजा शुद्धोदन को सुनाया। राजा ने पुत्र वियोग के दुःख से अति विह्वल[1] हो कर राज-मंत्री तथा कुलगुरु को सिद्धार्थ को लौटा लाने को भेजा। उन्होंने सिद्धार्थ को बहुत कुछ कहा सुना, किंतु सभी प्रयास व्यर्थ हुआ। अंत में निराश हो कर वे राजधानी को लौट आये।

उधर सिद्धार्थ चलता२भार्गव ऋषि के आश्रम में पहुंचा। वहां उसकी बहुत से साधुओं से भेंट हुई। उन साधुओं ने उसे योगाभ्यास करना और कन्द मूल का आहार करने का उपदेश किया। उन पर विश्वास कर सिद्धार्थ ने वैसा ही करना आरंभ कर दिया। कुछ समय के बाद जब उसे योगाभ्यास से कोई लाभ होता न दीख पड़ा, तो वह स्थान छोड़ वह राम-गृह नामक नगर से होता हुआ हिमाचल पर विंध्यकोष्ठ आश्रम में अरडमुनि के पास पहुंचा। जब रामगृह में भिक्षा मांगने को शहर गया तो उसके राजपुत्रों के लक्षण देख लोग विस्मित हो गए। उन्होंने तुरंत उस नगर के राजा बिम्बिसार को इस बात की सूचना देदी। यह सुनते ही बिम्बिसार सिद्धार्थ के पास पहुंच गया। उसने अनेक उपदेशों द्वारा सिद्धार्थ के मन को डिगाना[2] चाहा। बिम्बिसार ने कहा "राजकुमार, अभी [illegible] आयु बहुत छोटी है, आप योगाभ्यास के कष्टों के

१ विह्वल, दुःखित। २ डिगाना, फुसलाना।

सहन करने योग्य नहीं है। वृद्ध होने तक आप यहां ही रह कर मेरे राज्य पर शासन करें, फिर वृद्धावस्था में मुक्ति पाने का विचार करना।' सिद्धार्थ अपने हठ पर दृढ़ था इसमें उसने यह भी न माना। तब बिम्बिसार ने सोचा अब अधिक कहना व्यर्थ है, क्योंकि यह अपने प्रण पर दृढ़ है। यह विचार वह अपने नगर को लौट आया।

आड़-मुनि के आश्रम में पहुंच सिद्धार्थ ने अनेक उपस्थित ऋषि मुनियों के सिद्धान्तों को सुना, उन पर मनन किया परन्तु उनमें से एक भी उसके मन को संतोष न देसका, कोई भी उसकी शंकाएं दूर न कर सका। वहां से आगे प्रस्थान कर बुद्ध गया में बोधिसत्व गयऋषि के आश्रम में पहुंचा और वहां पर उसने नैरञ्जना नामी नदी के तट पर तप करते हुए पांच मुनियों को देखा। सिद्धार्थ ने उन मुनियों से उनकी तपस्या का उद्देश्य[1] पूछा। उन्होंने कहा कि इस तपस्या से इन्द्रियों का दमन होता है, इन्द्रियदमन से कोई विषय नहीं सताता। जब विषय-वासना न रही, तो मोक्षपद स्वयं मिल ही गया।" उन का यह कथन सिद्धार्थ के चित्त पर कुछ प्रभाव कर गया। उसने सोचा कि बिना अनुष्ठान[2] किये किसी सिद्धान्त के सत्य वा असत्य का निर्णय नहीं हो सकता। कदाचित् इन मुनियों का सिद्धान्त ही ठीक हो। यह विचार सिद्धार्थ ने एकान्त स्थान में बैठ कर तपश्चर्या[3] करना प्रारम्भ कर दिया। उसने इतना कड़ा तप किया कि उसके शरीर में सिवाय अस्थि[4] चर्म के शेष कुछ न रहा। जो कष्ट सिद्धार्थ उठा रहा था उनका उद्देश्य कोई स्वार्थ-सिद्धि न था। उसके मन में तो यही एक प्रबल इच्छा

१ उद्देश्य, लक्ष्य। २ अनुष्ठान, नियम से कोई काम करना। ३ तपश्चर्या, तपस्या। ४ अस्थि, चर्म हड्डी तथा चमड़ा।

थी कि किसी तरह यह जगत् जरा, जीवन तथा मरण आदि के दुःख से मुक्ति पाजाय और दुःख का राज्य संसार से सदा के लिये उठजाय। इसी प्रकार तप करते २ उसने छः वर्ष बिता दिये, किन्तु इसका कोई उत्साह-प्रद[1] परिणाम न निकला। एक दिन उसने सोचा कि एक ओर तो इतने महान् कार्य्य को पूर्ण करने का भार मैंने अपने ऊपर ले रक्खा है और दूसरी ओर शरीर को ऐसा निकम्मा और दुर्बल बना दिया है कि जिससे जगत् की भलाई तो दूर रही अपना जीवन भी कठिन होगया है। यह विचार कर फिर उसने शरीर पुष्ट करना आरम्भ कर दिया। जब उन पांच मुनियों ने देखा कि सिद्धार्थ हमारे उपदेश से विपरीत[2] अनुष्ठान करने लगा है तो वे उसे छोड़ किसी दूसरे जङ्गल में चले गये। सिद्धार्थ उसी वन में एक अश्वत्थ[3] वृक्ष के नीचे बैठ योगाभ्यास करने लगे। कुछ समय के बाद उन्हें पूर्ण अभ्यास होगया। कभी २ वह योग में इतने मग्न होजाते थे कि उन्हें भोजन की भी सुध नहीं रहती थी।

इतना परिश्रम करने पर भी उन्हें इसका अब तक कुछ फल न मिला। इसी कारण वे मन में अति दुःखित हुआ करते। एक दिन वे उसी पीपल के नीचे बैठे इसी चिन्ता में मग्न थे कि तत्काल उन्हें मोक्ष का रहस्य प्रकट हुआ और ज्ञान की वह ज्योति प्रगट होगई जिसकी खोज में वह बहुत दिनों से भटक रहे थे। उसी दिन से वे 'बुद्ध' कहलाने लगे। तभी से उस स्थान का नाम 'बुद्ध गया' पड़ गया। अब बुद्ध ने सोचा

---

१ उत्साह-प्रद, हिम्मत देने वाला। २ विपरीत, उलटा।
३ अश्वत्थ, पीपल।
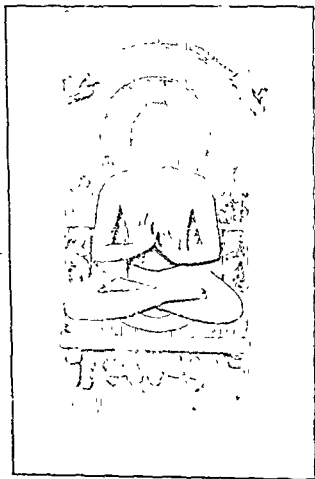
इस प्रकार बुद्ध बिम्बिसार जैसे राजा तथा कई अ
साधारण लोग तथा ऋषियों को उपदेश दे दे कर उन्हें संस
के दुःखदायी बन्धनों से छुड़ा रहे थे। उनके धर्म का प्रच
यहां तक होगया कि क्या बालक, क्या युवक, क्या बूढ़े स
बुद्ध धर्म को स्वीकार करने लगे। अनेक मुनियों औ
ऋषियों ने अपनी तपश्चर्या छोड़ दी।

जब राजा शुद्धोदन को अपने पुत्र के विषय में ऐसी
विचित्र घटनाओं की सूचना मिली तो उसे भी पुत्र को दे
की प्रबल उत्कण्ठा होने लगी। जब बुद्ध ने सुना कि पिता उन्हें
लने को उत्सुक हैं तो वे स्वयं तुरन्त उन्हें मिलने गये। पुत्र को
शुद्धोदन को जो आनन्द हुआ उसका वर्णन करना कठिन है
अन्त में बुद्ध के उपदेश से सबका सब परिवार और यशो
उसके अनुयायी होकर बौद्ध धर्म का प्रचार करने लगे।

एक दिन बुद्ध गया से कुशी नगर प्रचार के लिए आ
थे। रास्ते में पावा ग्राम में चुन्द नामके लोहार ने उन्हें भ
नार्थ निमन्त्रण दिया। चुन्द ने चावल और मांस बुद्ध
सामने परोस दिया। बुद्ध ने भोजन का तिरस्कार क
उचित न समझ मांस आप ले लिया और चावल दूसरे शि
को दे दिया। खाना खाने के बाद ही बुद्ध के पेट में दर्द हु
और आंव की बीमारी हो गई। कुशी नगर में पहुंचते २ व
निर्बल होगये। वहां पर वे एक बाग में ठहरे और दो स
वृक्षों के नीचे शय्या लगाकर लेटे २ अपने प्रधान शि
आनन्द को बौद्ध धर्म के भविष्य-प्रचार[1] और उसके संगठ
के विषय में शिक्षा देते रहे। उन्होंने बौद्धों की यात्रा के
यह चार स्थान बतलाये।

---

१ भविष्य प्रचार, प्रचार जो कि भविष्यत् में करना है। २ संगठन, सं

(१) लुम्बिनी, (२) गया (३) सारनाथ और (४) कुशीनगर इस प्रकार अन्त समय में भी धर्म का प्रचार करते हुए महात्मा बुद्ध निर्वाण को प्राप्त हुए। उनके शव को ५०० कपड़ों के परत में लपेट कर एक तेल भरे लोहे के सन्दूक में रख दिया गया। उस संदूक को ऊपर से लोहे की चादरों से बन्द कर दिया, इसलिए कि बुद्ध के शरीर की भस्म[1] तथा अस्थियां[2] फिर मिल सकें। उनके शिष्यों में परस्पर वाद विवाद के बाद उनकी अस्थियों के बराबर आठ भाग किये गये और वह आठ भाग आठ जातियों में बांटे गये। उन अस्थियों को भूमि में गाड़ कर उनपर एक २ स्तूप बनाया गया। जिन स्थानों पर स्तूप बनाये गये उनके नाम ये हैं—राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, मल्लकल्प, रामग्राम, वटद्वीप पावा और कुशीनगर। अभी सन् १९०९ में पेशावर के समीप एक स्तूप में से बुद्ध की कुछ अस्थियां मिली थीं।

संसार में अनेक धर्म प्रचलित हुए और नाम शेष[3] रह गये किन्तु बुद्ध धर्म की गति विचित्र रही। बुद्ध के जीवन-समय में तथा उनके पीछे केवल साधारण जनता ही नहीं किन्तु अशोक, कनिष्क और हर्ष जैसे बड़े २ राजा, महाराजा हजारों नहीं लाखों की संख्या में, बुद्ध धर्म के अनुयायी बनने लगे। अशोक, आदि कतिपय राजाओं ने तो इस धर्म का इतना प्रचार किया जितना अभी तक किसी धर्म्म के अनुयायी ने पृथ्वी पर अपने धर्म का प्रचार नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि संसार भर के मनुष्यों में सब से बड़ी संख्या इन पुरुषों की होगई जो महात्मा बुद्ध के नाम पर ही अपना जीवन न्योछावर करने को सदा उद्यत रहते हैं। धन्य हैं ऐसे महात्मा और धन्य है वह देश जिसमें ऐसे महात्माओं का जन्म होता है।

---

१ भस्म, राख २ अस्थियां, हड्डियां ३ नाम-शेष जिसका केवल नाम ही पृथ्वी पर रह गया हो।

बुकर टी वाशिंगटन।

अफ्रीका के आदि-निवासियों की एक नीग्रो नामक जाति है। सत्रहवीं सदी में इस जाति के लोगों को दास बनाकर अमरिकामें बेचने का क्रम¹ आरंभ हुआ था। इस दासत्व के समय उन लोगों को कितने कष्ट सहने पड़ते थे इसका अनुमान मिसेस ऐस.टी.स्टो के इस लेखसे लगाया जा सकता है 'इन गुलामों को दिन भर धूपमें काम पड़ता था यदि उनसे काम में कोई सुस्ती या भूल होजाती थी तो ज़मींदार उन्हें कोड़े मारता था, यहां तक कि उनके शरीर से रक्त बहने लगता था। रात को उन्हें पेट भर खाना भी न मिलता था। एक छोटी सी झोंपड़ी में पशुओं की नाईं बन्द कर दिये जाते थे और उनके साथ अनेक प्रकार के अत्याचार किये जाते थे। यदि कोई दास अत्यन्त दुःखित हो कर भाग जाते तो उनके पीछे शिकारी कुत्ते छोड़ा दिये जाते थे"। उन दिनों प्रायःस्वामी लोग दासों को अपना पैतृक धन (Property) समझते थे और उनके साथ मनमाना व्यवहार करते थे। कुछ ऐसे भी सुहृदय² पुरुष थे जो इनकी दुर्दशा देख परम दुःखी होते थे। जब ऐसे महात्मा पुरुषों ने कुछ आन्दोलन किया तो दासों की दशा धीरेरसुधरने लगी। अन्त में उत्तर अमरीका की प्रायः सभी रियासतों ने गुलाम स्वतन्त्र कर दिये परन्तु दक्षिणी अमरीका वाले उनसे सहमत न हुए। इस कारण १८६० में इन दोनों दलों में भयानक युद्ध आरम्भ होगया और पांच साल तक चलता रहा। उस समय मिस्टर लिङ्कन अमरीका के प्रधान अधिष्ठाता थे जो दासत्व के बड़े विरोधी थे।

१ क्रम सिलसिला २ सुहृदय. कोमल चित्त वाले।

उक्त महोदय ने सन् १८६३ के सितम्बर मास में दा
क्रय-विक्रय को बन्द कर दिया। सन् १८५८ में जब दासों
क्रय-विक्रय खूब जारी था तब बुकर टी. वाशिंगटन का ज
अमरीका के वरजीनिया प्रान्त में एक अत्यन्त निर्धन दा
कुल में हुआ था।

इसकी माता एक धनवान् अमरीकन के यहां दासी
कार्य किया करती थी। इस धनवान् ने उसे खरीद कि
हुआ था। उसके रहने के लिए उसे एक टूटा फूटा मक
और ओढ़ने के लिए एक फटी गुदड़ी दे रक्खी थी जो
वाल बच्चे वाली स्त्री के लिए अपर्याप्त थी।

बुकर की बाल्यावस्था खेतों पर काम करते और बा
में झाड़ू देते बीत गई। इस काम से हटाकर उसे भोजन
समय अपने मालिक की मक्खियां उड़ाने के कार्य में लगा
गया। कभी २ उसे स्वामी के लड़कों को स्कूल के द्वार
पहुंचाने का भी काम सौंपा जाता था। जब कभी वह स्कू
में जाता तो स्कूल के दृश्य को देख कर उसके मन में
लिखने पढ़ने की प्रबल इच्छा उठने लगती थी।

सन् १८६० में जब दास स्वतन्त्र कर दिये गये तो बुक
की माता बच्चों को साथ ले कुछ दूर माल्डन नामी गांव
अपने दूसरे पति के पास चली गई। वहां बुकर को उस
नये पिता ने अपने साथ नमक की कान में मज़दूरी क
को लगा लिया। प्रातः ७ बजे से लेकर रात के सात बजे त
बारह घण्टे उसे वहां काम करना पड़ता था। यद्यपि बाल
बुकर के मन में पढ़ने की प्रबल इच्छा थी, तथापि उसे प
लिए कोई अवसर नहीं मिलता था। दूसरे लड़कों
जाते देख उस के मन में बड़ा खेद होता थ

बहुत कुछ कहने सुनने पर पिता ने उसे एक रात्रि-पाठशाला में पढ़ने की आज्ञा देदी. परंतु बुकर इस प्रबन्ध से सन्तुष्ट न हुआ अन्त में उद्योग करने पर उसे इस शर्त पर स्कूल जाने की आज्ञा मिली कि स्कूल जाने से पहले और पीछे कम से कम चार घण्टे काम किया करे।

नमक की खान छोड़ बुकर कोयले की खान में काम करता रहा, तो भी उसे शिक्षा-प्राप्ति की लगन लगी रही। अपनी जीवनी में वह स्वयं लिखता है कि यद्यपि मुझे कभी २ उदास तथा निराश होना पड़ा तो भी मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं शिक्षा अवश्य प्राप्त करूंगा।

अवसर पाकर एक दिन सन् १८७२ में वह हैम्पटन के नार्मल स्कूल में पढ़ने के लिए चला। चलते समय न तो उस के पास मार्ग के लिए व्यय था न उसे यही मालूम था कि हैम्पटन कितनी दूर है। इस लिए मार्ग में उसे बड़ा कष्ट सहना पड़ा। जब किसी नगर में पहुंचता, तो वहां एक दो दिन ठहर कर मज़दूरी कर के कुछ द्रव्य कमा लेता, तब आगे बढ़ता। कई दिन उसे भूखा रह कर रात को सड़क की पटड़ियों पर सो कर निर्वाह करना पड़ा। अन्त में वह ५०० मील पैदल चल एक दिन हैम्पटन पहुंच गया।

जब वह स्कूल में गया तो वहां की मुख्याध्यापिका ने उसे बहुत मैला कुचैला देख कर प्रविष्ट करने में आना कानी की। बहुत विनय करने पर उसे एक कमरे में झाड़ू देने का काम दिया गया। बुकर ने तीन बार उस कमरे में पहले झाड़ू दिया, फिर एक झाड़न से उस कमरे की सब वस्तुओं को साफ किया। जब अध्यापिका कमरा देखने आई तो उस ने

कपड़े से हर एक वस्तु को रगड़ २ कर देखा, परंतु उसे क
भी धूलि का लेश भी न मिला। इस कार्य-सावधानता[1] को दे
वह बड़ा सन्तुष्ट हुई और बुकर को स्कूल में प्रविष्ट कर लिय
विद्यार्थियों के कमरों में झाड़ू देना, बिस्तर बिछाना श्र
भोजन आदि में सहायता देना उसका काम था। इसी
उसकी शिक्षा तथा भोजनादि का खर्च चल जाता था। तीन
उसने इसी अवस्था में बिताए। जब कभी किसी वस्तु
आवश्यकता होती तो मज़दूरी करके उस वस्तु को मोल
लेता है। जैसे तैसे उसने आठ वर्ष व्यतीत किए और ईश
की कृपा से सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होता रहा।

ग्रेजुएट होने के बाद उसने अपने सजातियों के लिए
पाठशाला खोली। पाठशाला के विद्यार्थियों की संख्या इ
बढ़ गई कि उसे एक रात्रि-पाठशाला भी खोलनी पड़ी। र
से उसने कई विद्यार्थियों को हैम्पटन भेजने का प्रबन्ध कि

दो वर्ष बाद १८७८ में यह कोलम्बिया प्रांत के वाशिङ्ग
शहर में उच्च कक्षा की पढ़ाई के लिए गया और आठ मह
वहां रहकर अच्छा विद्वान् हो गया। जब वहां से लौट
आया तो हैम्पटन स्कूल की प्रबन्धकारिणी सभा ने उसे
टन में बुला कर पाठशाला में पढ़ाने तथा छात्रालय का प्र
करने का काम सौंप दिया।

इस समय नीग्रो जाति के लोगों की प्रवृत्ति शिक्षा
ओर दिन २ आगे से अधिक झुक रही थी। दक्षिण अफ़्
की अलबामा रियासत के टस्केजी नाम के छोटे से गांव
कुछ लोगों की इच्छा हुई कि उस गांव में एक आदर्श-
शाला खोली जाय। हैम्पटन के अध्यक्ष जरनल आर्मस्

---

१ कार्य-सावधानता, सुगढ़पन।

बुकर को ही इस काम के योग्य समझ कर उसे वहां भेज दिया। जब वह वहां पहुँचा तो पाठशाला की दशा देख कर विस्मित हो गया। वह स्वयं लिखता है—"टस्केजी जाने से पहिले मेरा विचार था कि पाठशाला की इमारत और शिक्षा की सामग्री तैयार होगी, परन्तु वहां पहुँच कर मैंने देखा कि न इमारत है और न शिक्षा की सामग्री है। इस से कुछ देर के लिए मैं निराश सा हो गया। परन्तु जब मैंने देखा कि यहां का प्रत्येक मनुष्य-नर और नारी-शिक्षा सुधा पान के लिए तरस रहे हैं तो मेरे चित्त को शान्ति हुई। कठिनता यह थी कि सरकार की ओर से केवल ६००० रुपये वार्षिक की सहायता मिलने का प्रबन्ध हुआ था। अब तक तो बुकर एक साधारण शिक्षक था, परन्तु टस्केजी रह कर उसे स्वतन्त्रता से उपकार करने का अवसर मिल गया। पहले पहल पाठशाला एक टूटे हुए गिरजे में खोली गई थी। उस मकान की यह दशा थी कि जब कभी वर्षा होने लगती तो सारी छत चूने लग जाती थी। कभी २ छाते के नीचे बैठकर पढ़ाना पड़ता था।" स्कूल की पूर्व दशा की यदि वर्तमान दशा से तुलना करें तो निःसन्देह यह मानना पड़ेगा कि मानवी शक्ति तथा परिश्रम के आगे कुछ भी असम्भव नहीं।

जब बुकर टस्केजी में अध्यापक नियत हुआ था तो पाठशाला में केवल तीस छात्र थे और सब के सब उस समय की प्रथा के अनुसार व्याकरण के नियमों और गणित के सिद्धान्तों को मुखाग्र करना ही शिक्षा का उद्देश्य जानते थे। शारीरिक परिश्रम को लज्जास्पद मानते थे। ऐसी अवस्था में पहले पहल नूतन शिक्षा प्रणाली के अनुसार शिक्षा देने में उसे बहुत

१ मुखाग्र, कण्ठस्थ।
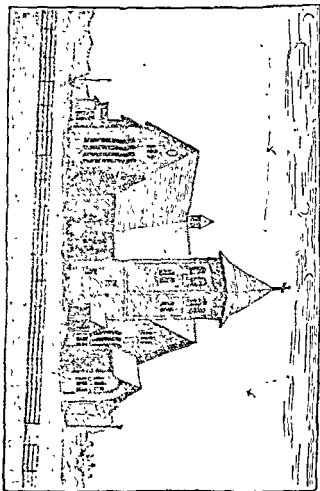
टस्केजी संस्था का एक भवन ।

परिश्रम करना पड़ा। जब अलबामा रियासत की सामाजिक तथा आर्थिक दशा उसने देखी तो यही निश्चय किया कि इस प्रान्त के लोगों को ऐसी कृषि सम्बन्धिनी शिक्षा देनी चाहिये जो उनकी आजीविका के लिए उपयुक्त हो। इस के अतिरिक्त धार्मिक तथा शिल्प-शिक्षा भी उनके लिए उसने आवश्यक समझी। परन्तु इन विचारों की पूर्ति के लिए द्रव्य की आवश्यकता थी। अतः प्रथम धनका एकत्रित करना ही बुकर ने अपना मुख्य कर्तव्य समझा।

सब से पहले उसने ७५० रुपये हेम्पटन के कोष से उधार लेकर टस्केजी के पास एक खेत मोल लिया। उस खेत में दो, तीन पुरानी झोंपड़ियां थीं, उन्हीं में विद्यार्थियों को पढ़ाने लगा इसलिए कि जब तक लोगों को कुछ काम कर न दिखाया जाय तब तक उन से द्रव्य मिलना कठिन होता है। धन के लिए बुकर ने घर २ मांगना आरम्भ कर दिया। जो कुछ मिलता उसे नीलाम कर देता। जो ज़मीन ली थी अब उस पर मकान बनाने का निश्चय हुआ। उसकी सफाई बुकर ने अपने हाथों तथा विद्यार्थियों की सहायता से की, नींव भी अपने हाथों से खोदी। ईंटें भी स्वयं बनाने का संकल्प कर इमारत का काम आरम्भ कर दिया। मज़दूर, बढ़ई, तथा ईंटें बनाने का काम छात्र स्वयं करते थे। इधर थोड़ी बहुत इमारत खड़ी हुई, उधर लोगों से भी रुपया मिलने लगा। परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही पाठशाला में कई आवश्यक स्थान बन कर तैयार होगये। लड़कों की संख्या तो पहले ही से बहुत थी, अब दूर २ से छात्र आकर प्रविष्ट होने लगे। अतः बाहिर से आये हुए छात्रों के रहने के लिए छात्रालय की ज़रूरत पड़ी। उस समय उन के पास

मकान कोई न था। यहां पर एक मिट्टी का टीला था उसे बीच में काट कर ऊपर छप्पर रख दिया और उसी में छात्र रहने लगे। जो निर्धन छात्र यहां आते थे उनके लिए रात्रि पाठशालाएं खोल दी गईं।

वुकर के पुरुषार्थ से स्कूल अब कालिज में परिणत होगया। आत्मावलम्बन[1] तथा परिश्रम से टस्केजी संस्था की उन्नति होने लगी। सन् १८८१ में वुकर के पास थोड़ी सी भूमि, तीन इमारतें, एक शिक्षक और तीस विद्यार्थी थे. किन्तु इस समय इतनी उन्नति होगई है कि इस संस्था को एक छोटी सी बस्ती कहना ही उचित है। इस का क्षेत्रफल २३४४ एकड़ भूमि है। यहां पर छोटे बड़े मिला कर १०७ मकान हैं। सभी मिला कर कोई चालीस भिन्न २ विषयों में शिक्षा दी जाती है। इन सब पर कोई ४० लाख रुपया लगा है। यहां के भोजनालय में प्रायः २००० मनुष्य बैठ कर भोजन खा सकते हैं। मेज़ के एक ओर मनुष्य और दूसरी ओर स्त्रियां बैठ जाती हैं। सब आनन्दपूर्वक भोजन करते हैं।

जनता को सांसारिक कामों के योग्य बनाना इस विद्यालय का उद्देश्य है। इसमें मनुष्य को पढ़ने लिखने तथा हस्तकौशल दोनों तरह की शिक्षा दी जाती है। आजतक जितनी इमारतें बनी हैं वे सभी विद्यार्थियों ने अपने हाथों से बनाई हैं। इस संस्था के खुलने से १६२१ तक यहां से कोई नौ हज़ार विद्यार्थी शिक्षा पाकर निकल चुके हैं।

महात्मा वुकर १७ नवम्बर सन् १६१६ में परलोक सिधार गये। कहने को तो इन का अवसान[2] होगया,

---

१ आत्मावलम्बन, अपने पर आश्रित होना। २ अवसान, समाप्ति।

परन्तु जब तक हबशी जाति संसार में विद्यमान रहेगी तब तक वह प्रत्येक व्यक्ति[1] के आत्मा पर राज्य करते रहेंगे।

बुकर की कार्य-सफलता में बहुत कुछ परिश्रम उनकी अर्धाङ्गिनी[2] श्रीमती डेविड्सनने भी किया है। यह एक गौरङ्ग[3] रमणी थीं और नीग्रो जाति के उद्धार के लिए बुकर के साथ काम करती थीं। दोनों का परस्पर इतना प्रेम हो गया था कि वाशिंगटन ने उनके साथ विवाह कर लिया।

स्कूलों के द्वारा शिक्षा-प्रचार के अतिरिक्त बुकर महाशय ने अपनी जाति का कई अन्य तरह से भी उपकार किया। सारी हबशी जाति को उन्होंने एक सूत्र में बांध दिया, उनमें से बहुतों को पादरी बनाकर परदेशों में प्रचार के लिए भेजा। परन्तु सब से बड़ा काम जो उन्होंने अपनी जाति के लिए किया है वह अमरीका में काले और गोरे चमड़े वाली जातियों में एक दूसरे के प्रति सद्भाव पैदा करना है। आज काले और गोरे का अमरीका में इतना भेद नहीं जितना तीस वर्ष पहले था। अमरीका में बुकर का इतना मान बढ़ गया था कि प्रत्येक व्यक्ति या संस्था उनको निमन्त्रित कर अपने को धन्य समझती थी। अमरीका का प्रधानपति स्वयं उन्हें अपने साथ भोजन करने को बुलवाता था। जब वे सन् १८८९ में इङ्गलैण्ड गये स्वयं महारानी विक्टोरिया ने उनको अपने साथ चाय पीने के लिये निमन्त्रित किया था। सच है बढ़ता वही है जो दूसरों को बढ़ाता है, जो स्वदेश प्रेमी है, जिसका लक्ष्य परोपकार और पुरुषार्थ तथा परमात्मा पर भरोसा है।

---

[1] व्यक्ति, पुरुष। [2] अर्धांगिनी, स्त्री। [3] गौरांग, यूरोपियन।

कागज़ ।

एक विद्वान ने कहा है "सभ्य जगत् में यदि कागज़ का अभाव होता तो सभ्यता के प्रकाश की रश्मियों[1] को समस्त संसार में पहुंचने के लिए हज़ारों वर्ष और चाहिये थे"। यह नहीं किन्तु यह कहना 'अत्युक्ति'[2] न होगा कि सभ्यता का सम्भव ही कागज़ पर निर्भर है। यह कागज़ का ही प्रताप है कि पुराने से पुराने महात्मा जिन्हें हुए कई युग हो गये, हमारे सामने जब चाहें उपस्थित हो सकते हैं। हज़ारों कोसों की दूरी पर बैठे हुए लोग पुस्तकों द्वारा दूसरे के विचारों को बिना प्रयास[3] जान सकते हैं। आधुनिक[4] सभ्य जगत् में जनता के जीवन के साथ समाचार-पत्रों का इतना गहरा सम्बन्ध हो गया है कि जब कभी किसी दिन समाचार-पत्र प्रकाशित न हों तो लोगों को वह दिन अत्यन्त कठिन सा हो जाता है। जितना कागज़ का [illegible] बढ़ेगा उतना ही विद्यादि की वृद्धि की सम्भावना है।

कागज़ बनाने की रीति के आविष्कार का सौभाग्य सब से पहले किस को प्राप्त हुआ इसकी अभी तक कोई खोज नहीं हो सकी। हां, यह अवश्य निश्चित है कि इसका प्रचार बहुत प्राचीन कालसे किसी न किसी रूपमें होता आयाहै। हिन्दुस्तान में आधुनिक कागज़ के आविष्कार से पहले की भोजपत्र पर लिखी हुई पुस्तकें मिलती हैं। चीन में वृक्षों की त्वचा[5] पर लिखने की प्रथा कोई हज़ार वर्ष हुए प्रचलित थी। वह लोग बांस औ

---

१ रश्मियों को, किरणों को। २ अत्युक्ति, बढ़ावा। ३ प्रयास परिश्रम। ४ आधुनिक, आजकल के। ५ त्वचा, छाल।

रोंम बनाने का यन्त्र।

बनाना था। कागज़ भी [illegible] करते थे। [illegible] लोगों से [illegible] वालों ने [illegible] का कागज़ बनाना सीखा और [illegible] ई॰ में उन्होंने [illegible] में कागज़ बनाने का बड़ा भारी कारखाना खोला था।

[illegible] देश के [illegible] के कागज़ बनाते थे इसी कारण कागज़ की [illegible] में अन्तर रहता है।

सन, रुई तथा [illegible] से रुई और [illegible] का कागज़ बनता था। इंगलैण्ड में मशीनों द्वारा कागज़ बनाना सन् १८१५ में आरम्भ हुआ। इस के बाद वर्षों में कागज़ बनाने की जितनी उन्नति हुई उसका वर्णन करना कठिन है। किन्तु [illegible] में वर्तमान रूप में कागज़ का बनना थोड़े समय से ही प्रारम्भ हुआ है।

कागज़ बनाने में सल्फेट आदि रासायनिक[1] पदार्थों का उपयोग[2] होता है। पहले लकड़ियों की लुगदी बनाते हैं, फिर उस में सल्फाइट मिला देते हैं। वृक्षों में जो [illegible] होती हैं उन में से एक कठिन काष्ठमय तन्तुओं की बनी होती है। दूसरी गोंद, राल और रस आदि मृदु पदार्थों से बनी होती है। कागज़ बनाने में पहली वस्तुओं का अधिक उपयोग होता है। कागज़ बनाने के कारखानों में सब से पहले देवदार तथा मुरु आदि वृक्षों के काष्ठमय तन्तु अलग किए जाते हैं। उन वृक्षों की लकड़ियां काटी जाती हैं, जो उन के ऊपर से छिलका उतार कर उन लकड़ियों के अढ़ाई २ फुट के टुकड़े कर लिये जाते हैं। इसके बाद उन छोटे टुकड़ों को चक्कियों में डाल कर इस प्रकार पीसते हैं कि उन के काष्ठमय तन्तु टूटने नहीं पाते किन्तु लकड़ियां घिस कर भूसा सा बन

१ रासायनिक पदार्थ, रस पदार्थ (chemicals) २ उपयोग, योग।
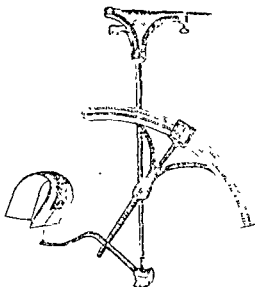
काग़ज़ तौलने का यन्त्र ।

जाती है। इस भूसे को छान लिया जाता है। जब यह साफ़ सुथरा हो जाता है तो इसका गिलावा बना कर इसमें सफ़ेदा, फिटकरी और नील आदि रासायनिक पदार्थ मिला दिये जाते हैं। इस भूसे को मशीनों में ऐसा पीसा जाता है कि वह मक्खन के समान नर्म हो जाता है। पीछे से राल फिटकरी और नील आदि पदार्थ मिला दिए जाते हैं, इसलिए कि लिखते समय कागज़ पर स्याही न फैल सके और न उस में से होकर फूट सके। जितना कागज़ अधिक सुन्दर तथा महंगा बनाना हो उतना ही अधिक उस पर सरेश का पानी आदि छिड़के जाते हैं। ऐसे कागज़ पर स्याही बिल्कुल नहीं फैलती। स्याही- चूस कागज़ों को बनाते समय उन में उक्त रासायनिक पदार्थों में से कुछ नहीं मिलाया जाता, इस कारण थोड़ी सी स्याही भी उन पर फैल जाती है। यदि किसी कागज़ पर पानी की एक बूँद भी डाली जाय और उसे पोंछ कर तुरन्त उस पर लिखना आरम्भ कर दिया जाय तो स्याही फैल जाती है। इसका कारण यह है कि जहां पर पानी गिरता है वहां की सरेश की चिकनाहट निकल जाती है।

भूसे का गिलावा जब मक्खन के समान चिकना हो जाता है तो उसे पानी में घोल कर कपड़े की छलनी से छान लेते हैं और उसे एक तांबे के तार से बने हुए यन्त्र पर फैला देते हैं। वह यन्त्र इधर उधर हिलता रहता है इस लिए कि उस गिलावे का पानी सूख जाय। उस के ऊपर एक लोहे का रूल रहता है जिसके साथ मकड़ी के जाले के समान पतला परत लिपटता चला जाता है। यह परतें इतने हलके और कोमल होते हैं कि उनके लिये एक अत्यन्त सूक्ष्म यन्त्र की सहायता ली जाती
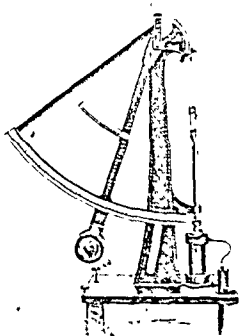
कागज़ के खिंचाव जांचने का यन्त्र।

समय और उसका उपयोग।

जो चीज़ मनुष्य के पास बहुत कम है और तो भी जिसे व्यर्थ खोने में वह तनिक परवाह नहीं करता. वह समय है। एक तो यह कि प्रत्येक मनुष्य के हिस्से में समय आया ही बहुत थोड़ा है और उसे भी यदि व्यर्थ खो दिया जाय तो कितने खेद की बात है।

आज कल जिधर दृष्टि डालिए उधर यही देखने में आता है कि जन-समूह लगातार काम में लगा हुआ है। क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी किसी न किसी कार्य में निमग्न[1] हैं और इस पर भी यही पुकार होती रहती है 'काम हो कहां से समय तो है ही नहीं'। यदि एक ओर बेचारे व्यापारी-गण प्रातःकाल से ही उठकर रात के बारह बजे तक अपनी उसी व्यापार-सम्बन्धी उधेड़ बुन[2] में लगे हुए भी यही कहते सुनाई देते हैं कि काम सिमटता[3] ही नहीं, अमुक कार्य तो बिलकुल ही नहीं हुआ' तो दूसरी ओर विद्यार्थी जन अलग ही कहा करते हैं 'क्या करें किधर जायँ, एक मिनट का भी अवकाश नहीं, इस पर भी पढ़ने लिखने का इतना काम पड़ा हुआ है इत्यादि'। निस्सन्देह सभी मनुष्य अपने २ कार्यों में लगे रहते हैं. तथापि ये काम उनके ठीक समय में पूरे नहीं होने पाते।

यदि आप इसका कारण सोचने को बैठें तो यही ज्ञात होगा कि हम अपने समय का उपयोग ठीक नहीं जानते। संसार के सभी भोग्य पदार्थों की उपयोगिता इस पर आश्रित

---

१ निमग्न, आसक्त। २ उधेड़-बुन, सोच विचार।
३ सिमटना, समाप्त होना।

है कि कितना समय हम उनके भोगने में लगा सकते हैं। हमारे मित्र, पुस्तक और स्वास्थ्य किस काम के यदि उनके लिए हमारे पास समय न हो। यह लोकोक्ति[1] है कि 'समय धन है'। केवल यही नहीं, 'समय हमारा जीवन है' जिसपर भी बहुत से जान बूझ कर इसकी उपेक्षा करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे समय का अधिकांश निरर्थक कार्यों तथा व्यर्थ वार्तालाप आदि में जाता है, और अधिकतर नित्य ही हम लोग समय की अवहेलना[2] किया करते हैं। उसको काम में लाना अथवा उसका मान करना तो दूर रहा यदि आज का काम आज हो भी सकता है तो भी हम जान बूझ कर उसको कल के लिए टाल देते हैं। इससे न केवल सैकड़ों और सहस्रों रुपयों की हानि होती है, किन्तु साथ ही हम बहुत अच्छे २ अवसर भी खो बैठते हैं जो फिर सारी आयु भर में भी नहीं मिलते।

बहुत से लोग कहेंगे कि हम समय का उचित उपयोग करना चाहते तो हैं, परन्तु जानते ही नहीं कि उसका सदुपयोग किया किस भांति जाय। इसके उत्तर में संक्षेप रूप से इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आप अपने समय की कार्यानुसार व्यवस्था कर डालिए और तदनुसार ही प्रत्येक कार्य्य कीजिये। फिर देखिये कि आप स्वयं ही उसके सदुपयोग को जानने लगते हैं या नहीं। तथापि इस अवसर पर कुछ ऐसे सिद्धान्तों का बतलाना आवश्यक जान पड़ता है जो विशेष कर नवयुवकों के लिये बहुत ही उपयोगी हैं।

समय का सदुपयोग कैसे किया जाय इस विषय में ध्यान रक्खो-

---

१ लोकोक्ति, कहावत। २ अवहेलना, लापरवाही।

(६) जो समय मिले उसका एक मिनट भी व्यर्थ न खोओ क्योंकि वह समय फिर नहीं मिलने का। किसी ने क्या ही अच्छा कहा है कि "समय सदा ही अज्ञात अवस्था में दौड़ता रहता है और उसकी चाल बिजली की चाल से भी कहीं बढ़कर है. उसका सिर गंजा है. केवल एक छोटी सी चोटी उसके आगे की ओर है। अस्तु, ज्योंही वह आपके निकट से दौड़ता हुआ निकले तत्काल उसकी आगे वाली चोटी पकड़ लो। यदि आधे सेकंड की भी देर की तो वह निकल जायगा और फिर हाथ न आवेगा. चाहे आप पीछे से कितने ही हाथ पांव मारें, क्योंकि उसके सिर पर पीछे की ओर बाल हैं ही नहीं इस भांति आप समझ सकते हैं कि जहां किञ्चित्मात्र भी देर हुई और समय निकल गया।" अब विचार कीजिये कहां हमारा घण्टों का व्यर्थ वार्तालाप अथवा निरर्थक खेल! इस कारण चाहिये कि हम अपने समय का एक पल भी बिना किसी कार्य के न जाने दें। साथ ही यह भी ध्यान रखना परमावश्यक है कि समय सदा इन्हीं छोटे २ पलों से बना है। यदि हमने इन छोटे पलों को ही व्यर्थ नष्ट कर दिया तो समझ लो कि सारा समय ही नष्ट हो गया. यदि हमने इनको कार्य में ले लिया तो समय का अच्छा उपयोग हो गया।

जिन लोगों ने समय का सदुपयोग[१] किया है, वे जनता के सच्चे नेता[२] और अनेकानेक तत्त्वों के आविष्कर्ता, बड़े २ उत्तम काव्यों के रचयिता तथा प्रसिद्ध लेखक हुए हैं। ऐसे पुरुषों ने उन क्षणों का सदुपयोग करना सीखा था जिन्हें साधारण मनुष्य व्यर्थ खो देते हैं।

---

१ सदुपयोग. अच्छा उपयोग (इस्तेमाल) २ नेता, मुखिया, नायक।

कूवियर (Cuvier) साहब ने गाड़ी में बैठकर इधर उधर घूमते हुए ही कम्पेरेटिव आनाटोमी (Comparative Anatomy) की पुस्तक लिख डाली. डाक्टर मैसनगुड (Massongood) ने अपने विभाग के रोगियों की चिकित्सा के लिए आते जाते समय लूक्रिशस (Lucretious) की कविता- पुस्तक का अनुवाद कर डाला।

काम के लिए समय नहीं मिलता यह केवल आलसी पुरुषों की ही शिकायत रहती है। नहीं तो जहां काम करने की इच्छा होती है वहां समय भी निकल आता है।

इस लिए मनुष्य को अपनी भलाई के लिए आलस्य का परित्याग कर समय का सदुपयोग सीखना परमावश्यक है।

(२) सब से पहले केवल आवश्यक कार्यों को ही हाथ में लो और उनको तुरन्त कर डालो। जो लोग उन्हें किसी दूसरे समय के लिए रख छोड़ते हैं उनके बहुत से कार्य सदा बिना किए हुए ही पड़े रह जाते हैं और अन्त में उनको बड़ी २ हानियां उठानी पड़ती हैं। कहा भी है—'काल करै सो आज कर आज करै सो अब. अवसर बीत्यो जात है बहुरि करोगे कब'। यह भी हमेशा ध्यान रक्खें कि हम समय का उपयोग करते हुए भी अधिकतर लाभ किस भांति उठा सकते हैं। बहुत से मनुष्यों में, विशेष कर विद्यार्थियों में. ऐसा देखा जाता है कि वे अपने समय को कार्य में तो लगाते हैं, परन्तु आवश्यक कार्य में नहीं लगाते। जैसे, किसी विद्यार्थी की कल इतिहास में तो परीक्षा होने को है और आज संध्या को पढ़ने के समय किसी शिक्षाप्रद उपन्यास या रेखागणित की पुस्तक को लेकर [illegible] जाय । यद्यपि उसका समय निरर्थक तो नहीं

गया तथापि उसका सदुपयोग नहीं हुआ। इस कारण हमें अपना समय प्रथम केवल आवश्यक कार्यों में ही लगाना चाहिये।

(३) ठीक कार्य को ठीक समय पर करना चाहिए। इसके लिए पहले ही यथोचित रीति से अपने समय को प्रत्येक कार्य के लिए विभक्त कर लेना परमावश्यक है। जब हमारा समय इस भांति भिन्न २ कार्यों में विभक्त हो जाय तब हमें देखना चाहिये कि अमुक समय का कार्य उस निर्धारित समय में हुआ है या नहीं। यदि न हुआ हो तो उसको उसी समय में समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। ध्यान रहे कि प्रात काल का कार्य कितना ही थोड़ा क्यों न हो शाम के लिए कभी न छोड़ा जाय, क्योंकि इस भांति छोड़ा हुआ कार्य धीरे २ बहुत जमा होजाता है और फिर हो ही नहीं पाता। इस कारण प्रति घंटे तथा मिनट का कार्य उसी घंटे तथा मिनट में समाप्त कर देना नितान्त आवश्यक है। इस को अङ्गरेजी में (Punctuality) अर्थात् कार्य को ठीक समय पर करना—कहते हैं।

(४) एक समय में एक ही कार्य करो। यदि आपने एक से अधिक कार्य एक ही समय में किये तो याद रक्खो कि उन में से कोई भी कार्य अच्छा और पूरा न हो सकेगा, क्योंकि एक समय में एक ही कार्य करने में चित्त की स्थिरता और शान्ति से काम लिया जा सकता है जो एक कार्य की उत्तम समाप्ति के लिये परमावश्यक है। कहा भी है:—

"एकहि साधे सब सधे, सब साधे सब जाय"।

(५) जिस किसी भी कार्य को करो उसे पूरा करके छोड़ो, अधूरा कभी न छोड़ो। यदि बीच में विश्राम भी लो तो बहुत

थोड़ा विश्राम लो, ताकि वह कार्य शीघ्र समाप्त होजाय क्योंकि कार्य को अधूरा[1] छोड़ने से बहुधा बहुत से अनावश्यक तथा असामयिक[2] कार्यों में समय व्यर्थ नष्ट होजाता है। न पहला ही काम पूरा होता है और न कोई अन्य काम समाप्त होता है। एक काम थोड़ा सा किया दूसरा ले बैठे दूसरा थोड़ा किया तीसरा आरम्भ कर दिया। इस प्रकार अधूरे कामों का तांता लग जाता है और एक ऐसी टेव[3] सी पड़ जाती है कि मनुष्य फिर किसी काम को या तो पूरा कर ही नहीं सकता या उसके पूरा करने में उसे फिर बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं और एक दिन के स्थान में चार दिन लगते हैं। बहुधा विद्यार्थियों को देखा जाता है कि जहां उन्होंने किसी निबन्ध या पुस्तक को थोड़ा कठिन पाया वहीं उसे छोड़ बैठे। कुछ और देखने लगे। किसी दूसरी पुस्तक को पढ़ने लगे। यह बहुत बुरी तथा हानिकारक टेव है। इससे बचने का यत्न करना चाहिये। जिस कार्य पर हाथ डालें उसे यथाशक्ति पूरा करके छोड़ना चाहिये।

यदि इन [illegible] सिद्धान्तों के अनुसार कार्य किया जाय तो [illegible] समय का बहुत उत्तम उपयोग होगा और प्रत्येक कार्य सुगमता, शीघ्रता तथा उत्तमता से हो सकेगा।

अब केवल एक बात और है वह यह कि प्रत्येक मनुष्य को अपने [illegible] समय के आधीन करने की टेव डालनी [illegible] अनेक कार्यों को ठीक समय में ही [illegible] [illegible] अनुकूल [illegible] [illegible] सकती है—

[illegible]

(क) प्रातः काल उठ कर ही अपने दिन भर के कार्य को भिन्न २ समय तथा घण्टों में विभक्त कर लो, और तत्काल ही उसके अनुसार कार्य करना आरम्भ कर दो।

(ख) रात को सोते समय अपने दिन भर के किए हुए कार्य पर दृष्टि डालो और उसका प्रातः काल की कीहुई व्यवस्था से मिलान करो। फिर निष्पक्ष[1] होकर सूक्ष्म दृष्टि से देखो कि सारा कार्य उसी व्यवस्था के अनुकूल हुआ या नहीं, और क्या त्रुटि[2] रह गई। यदि कोई त्रुटि अकस्मात्[3] रह गई हो तो भविष्यत् में उस का पूरा २ ध्यान रक्खो जिस से वह फिर न होने पावे।

---

१ निष्पक्ष. किसी तरफ का न होकर । त्रुटि. कमी २ अकस्मात् बिना जाने ।

ओर से एक भी उत्तर न मिला। इतने में महावीर भी कहीं से खेलता कूदता वहां आ निकला। उसे देख राजा ने प्रसन्न हो गले लगाया और कहा "बेटा, बता तो सही, तूने क्या कुछ पढ़ा लिखा है? दोनों काल संध्या तो निर्विघ्न[१] करता है न?" महावीर से कोई उत्तर न बन पड़ा और चुपचाप खड़ा रहा। अब राजा ने बहुत आग्रह[२] किया तो उसने यह किया, महाराज मैंने कुछ नहीं पढ़ा।

यह सुन राजाके नेत्र क्रोधसे लाल होगये और वह भूमित्र को कहने लगा "पंडित जी मेरे पिता, पितामह, प्रपितामह आदि सभीकी शिक्षा आपके कुलमें ही हुई है। इसी कारण मैंने राजकुमारको आपके आश्रयपर छोड़ा था परन्तु आपने कर्तव्य की कोई परवाह नहीं की। अभीतक हमारे वंश के किसी ने भी अशिक्षित[३] रहकर राज्य नहीं किया। अब यदि महावीर मूर्ख रहा तो मेरा और आपका नाम कलंकित होगा. अच्छा मैं महावीर को आपके यहां एक मासतक और रहने देता हूं. यदि इस समय में भी इसने कुछ न सीखा तो मैं यह कहे बिना न रहूंगा कि हमारा कुलगुरु भूमित्र शिक्षा देनेके योग्य नहीं है।' यह कहकर राजा वहां से चल दिया। जयसिंह के यह वचन भूमित्र के हृदय में शर-समान[४] चुभ गये और मनही मन वह बड़ा लज्जित हुआ। उसके मुख-मण्डल की सभी कांति[५] जाती रही। इसी चिन्ता में व्यग्र वह घर पहुँचा और बिना कुछ खाये पीये शय्या पर जा लेटा।

---

१ निर्विघ्न. विघ्नोंसे रहित २ आग्रह, हठ ३ अशिक्षित, अनपढ़। शर समान. बाणोंके सदृश। ४ कान्ति, शोभा।

राजकुमार महावीर को सुनीति का उपदेश ।

राजपूताने में राजसिंह नाम का एक राजा था। उसकी न्याय-शीलता, क्षमा और उदारता[1] दूर २ तक प्रसिद्ध थी। उसके एक ही पुत्र था जिसका नाम महावीर था। जब वह कुछ बड़ा हुआ तो राजा को उसके पढ़ाने की चिन्ता हुई। उसने महावीर को अपने कुलगुरु भूमित्र नामक ब्राह्मण के पास ले जा कर विद्याध्ययन के लिए सौंप दिया। भूमित्र ने राजपुत्र के पढ़ाने का जितना ही प्रयत्न किया किन्तु सब व्यर्थ निकल गया। उलटा उसे सब दिन लड़कों के साथ खेलने, कूदने तथा ताश खेलने का व्यसन लग गया था। न तो वह स्वयं पढ़ता और नाहीं दूसरे विद्यार्थियों को पढ़ने देता। सायंकाल के समय जल्दी ही घर सो जाता और पहर दिन चढ़े जागता। इन्हीं व्यसनों में उसका सब समय व्यर्थ जाता।

भूमित्र जैसा विद्वान था वैसा ही स्वधर्म-परायण भी था। राजा राजसिंह के सभी पूर्वजों की शिक्षा उसी के कुल में हुई थी। इस लिए महावीर को सुशिक्षित करना वह अपना धर्म समझता था। इस कारण उसने महावीर को विद्वान बनाने के निमित्त अनेक प्रयास किये, किन्तु एक भी सफल न हुआ। अतः वह ब्राह्मण बहुत उदास रहने लगा।

कुछ समय उसको इसी सोच विचार में व्यतीत हो गया। एक दिन राजा राजसिंह ने भूमित्र के पास आकर महावीर की शिक्षा के विषय में अनेक प्रश्न पूछे, परन्तु उसे भूमित्र की

१ उदारता, दानशीलता।

ओर से एक भी उत्तर न मिला। इतने में महावीर भी कहीं से खेलता कूदता वहां आ निकला। उसे देख राजा ने प्रसन्न हो गले लगाया और कहा "बेटा, बता तो सही, तूने क्या कुछ पढ़ा लिखा है? दोनों काल संध्या तो निर्विघ्न[1] करता है न?" महावीर से कोई उत्तर न बन पड़ा और चुपचाप खड़ा रहा। जब राजा ने बहुत आग्रह[2] किया तो उसने यह कहा, महाराज मैंने कुछ नहीं पढ़ा।

यह सुन राजाके नेत्र क्रोधसे लाल होगये और वह भूमित्र को कहने लगा "पंडित जी मेरे पिता, पितामह प्रपितामह आदि सभीकी शिक्षा आपके कुलमें ही हुई है। इसी कारण मैंने राजकुमारको आपके आश्रयपर छोड़ा था परन्तु आपने कर्तव्य की कोई परवाह नहीं की। अभीतक हमारे वंश के किसी ने भी अशिक्षित[3] रहकर राज्य नहीं किया। अब यदि महावीर मूर्ख रहा तो मेरा और आपका नाम कलंकित होगा. अच्छा मैं महावीर को आपके यहां एक मासतक और रहने देता हूं. यदि इस समय में भी इसने कुछ न सीखा तो मैं यह कहे बिना न रहूंगा कि हमारा कुलगुरु भूमित्र शिक्षा देनेके योग्य नहीं है।' यह कहकर राजा वहां से चल दिया। जयसिंह के यह वचन भूमित्र के हृदय में शर-समान[4] चुभ गये और मनही मन वह बड़ा लज्जित हुआ। उसके मुख-मण्डल की सभी कांति[5] जाती रही। इसी चिन्ता में व्यग्र वह घर पहुँचा और बिना कुछ खाये पीये शय्या पर जा लेटा।

---

१ निर्विघ्न, विघ्नोंसे रहित २ आग्रह, हठ ३ अशिक्षित, अनपढ़। ४ शर समान, बाणोंके सदृश। ५ कान्ति, शोभा।

भूमित्र की सुरीति तथा सुनीति दो कन्यायें थीं। सौंदर्य में ये अनुपम[1] थीं। बुद्धिमत्ता में उनके पसंगी[2] कोई अन्य कन्या न होगी। पिताकी ऐसी अवस्था देख उन्होंने सविनय उनसे इसका कारण पूछा। भूमित्रने सभी बात उन्हें पूरी२ कह सुनाई। इस पर सुनीति ने पिता से पूछा कि राजकुमार का सबसे अधिक प्रेम किस में है। भूमित्र ने उत्तर दिया "उसे संगीत सुनने का बड़ा व्यसन है।" यह सुन सुनीति ने पिता जी से प्रार्थना की कि आप कल राजकुमारको मेरे पास भेजिए।

सुनीति के कथनानुसार दूसरे दिन प्रातःकाल ही महावीर उसके पास भेजा गया। कुमार का उचित सत्कारकर सुनीति ने उसे आसन पर बैठाया और कुछ इधर उधर के वार्तालाप[3] के पश्चात कहा "राजकुमार, आपका यथोचित सत्कार करने के लिये हम असमर्थ हैं, तो भी जो कुछ बन पड़ेगा हम करने को उद्यत हैं। सुना है कि आप संगीतके बड़े रसिक हैं, यदि आज्ञा हो तो सुरीति एक दो गीत आप की भेंट करे" महावीर तो यह चाहता ही था। उसने सहर्ष यह स्वीकार कर लिया। सुरीति ने मधुर स्वर से यह दोहा गाया—

> जिनके विद्या तप नहीं, नहीं ध्यान औ ज्ञान।
> देखन में वे मनुज हैं, कर्मों में मृग जान॥

यह सुन सुनीति ने कहा जैसे यह दोहा सुनने में उत्तम है इसका अभिप्राय भी उतना ही गम्भीर[4] है। यह सुन महावीर ने उस दोहे का अर्थ सुनने की उत्कण्ठा प्रगट की।

---

१ अनुपम, जिसके समान और कोई न हो। २ पसंगी, बराबर। ३ वार्तालाप, बात चीत। ४ गम्भीर, गूढ़।

सुनीति ने कहा इसका अर्थ यह है कि 'जो पुरुष न शिक्षित हैं, न तपस्वी तथा ज्ञानी हैं वे स्वरूप में तो मनुष्य हैं पर कर्मों में मृग रूप हैं"।

यह सुन महावीर लज्जित सा होकर चुप हो गया। इस पर सुनीति कहने लगी—"बहिन, आपने गाने में तो कोई त्रुटि नहीं रक्खी पर इस दोहे में एक अशुद्धि रह गई है"

सुरीति—यह सम्भव नहीं, भर्तृहरि संस्कृत के महाकवि थे। उनकी कविता में अशुद्धि कहां?

सुनीति—अशिक्षित पुरुष को मृग से उपमा देना ठीक नहीं। मृग बड़ा सुन्दर जीव होता है। उसके नेत्र कैसे मस्त[1] और गति कितनी शीघ्र होती है। किन्तु अशिक्षित नर में तो कोई भी गुण नहीं। ऐसे पुरुष की मृग से तुलना करना मृग की निन्दा करना है।

सुरीति—क्या फिर अशिक्षित पुरुष वृष समाने[2] हैं?

सुनीति—कभी नहीं, क्या बैलों में कोई कम गुण हैं? वे हलों में जोते जाते हैं, कुओं से पानी निकालते हैं, और गाड़ी चलाते हैं। अशिक्षित पुरुष तो किसी काम का ही नहीं।

सुरीति—तो अपठित[3] पुरुष गधे के सदृश होंगे?

सुनीति—नहीं गधे भी उन से अच्छे हैं। गधे स्वामी का केवल घास-मात्र खाते हैं किन्तु दिन भर उसका काम करते हैं। गधों जैसा प्रत्युपकारी[4] जीव कौन है?

सुरीति—तो क्या वे कुत्ते के समान हैं?

सुनीति—कैसे हो सकते हैं? कुत्तों जैसा कोई कृतज्ञ पशु नहीं। रात्रि में जब स्वामी सो जाता है तो कुत्ता जाग

---

१ मस्त, मग्न। २ वृष-समान, बैल के सदृश। ३ अपठित बिद्या-हीन। ४ प्रत्युपकारी, उपकार का बदला देनेवाला।

पर उसके गृह की रखवाली करता रहता है। अशिक्षित पुरुष में यह गुण कहां?

सुरीति—अच्छा, तृण तो सब से तुच्छ तथा निकम्मी वस्तु है। ऐसे पुरुष तृण समान अवश्य होंगे।

सुनीति—नहीं, तृण से तो कितने ही काम निकलते हैं। पशु उसे खाते हैं, कैसी २ सुन्दर चटाइयां और टोकरियां उनसे बनती हैं। मूर्ख पुरुष की किस अंश में इससे तुलना हो सकती है?

सुरीति—अच्छा, मैं मूर्ख पुरुष को राख समान समझती हूं। राख जैसी निकम्मी कौन वस्तु है?

सुनीति—क्या आप राख के गुण नहीं जानतीं? जब किसी पशु के शरीर पर कोई व्रण हो जाता है तो उस पर राख लगा देते हैं और वह व्रण सूख जाता है। राख खाद का काम भी देती है। खेतों में इसे डाल दें तो फसल दुगुनी तिगुनी उपजती[3] है। परन्तु जो पुरुष मूर्ख रह कर अपने पूर्वजों के सञ्चित धन को वृथा व्यसनों में नष्ट करता है वह राख के समान भी नहीं।

सुरीति—अब मैं आप का आशय समझी। आप का अभिप्राय है कि जो पुरुष संसार में किसी काम का नहीं उसे उत्पन्न ही नहीं होना चाहिए।

सुनीति-हां यह ठीक है। इस संसार में मनुष्य का उत्पन्न होना तभी सफल गिना जाता है जब वह विद्या पढ़कर अपने को योग्य बनावे, दूसरों का उपकार और निर्धनों की सहायता करे।

सुरीति—क्या यह सभी गुण राजकुमारों के लिये आवश्यक[4] हैं?

---

१ राख, भस्म, । २ व्रण, ज़ख़्म। ३ उपजती हैं, उत्पन्न होती सञ्चित इकट्ठे किया हुआ। ४ आवश्यक, ज़रूरी।

सुनीति—आवश्यक ही नहीं परमावश्यक है। प्रजा के पालन करने का भार राजा पर है। यदि राजा का शासन धर्मानुकूल[1] होगा तो देश-देशान्तरों में उसकी प्रशंसा[2] होगी। जिस राजा की संसार में निन्दा हो उसका जीवन भी मृत्यु-समान है। यह संसार उसके लिए नरक ही है। राजकुमार महावीर यह सम्वाद बहुत ध्यान से सुनता रहा। चित्त में अपने जीवन को धिक्कार करता वहां से उठा और इन कुमारियों को धन्यवाद देता हुआ पाठशाला में चला गया।

उसे इतना पश्चात्ताप[3] हुआ कि उस दिन से उसके सभी व्यसन छूट गये। दिन रात उसे लिखने पढ़ने का ध्यान रहने लगा। प्रतिभा[4] तो उसमें थी ही फिर क्या था! थोड़े ही काल में वह विद्वान् होगया। जयसिंह के पश्चात् जैसा उसने शासन[5] किया वैसा किसी ही[6] महिपाल ने किया होगा। उसकी प्रजा उस से सदा सन्तुष्ट रहती थी।

---

१. धर्मानुकूल, धर्म के अनुसार। २. प्रशंसा, स्तुति।
३ पश्चात्ताप, पछतावा। ४ प्रतिभा, बुद्धि। ५ शासन, राज्य।
६ महिपाल, पृथ्वीपाल, राजा।

माननीय गोखले ।

माननीय गोखले।

कोल्हापुर के अन्तर्गत एक छोटे से गांव में सन् १८६६ ई० कोकण जाति के एक ब्राह्मण के यहां गोखले का जन्म हुआ। इनका नाम गोपालराव रक्खा गया, किन्तु महाराष्ट्र की प्रथा है कि पुत्र के नाम के साथ ही पिता का भी नाम जोड़ा जाता है। इसलिए इनका पूरा नाम गोपाल कृष्ण था क्योंकि इनके पिता का नाम कृष्ण था। यद्यपि इनके पिता विशेष धनवान् न थे, तो भी वे एक सुचरित्र और सुप्रतिष्ठित[1] पुरुष थे। धनाभाव होने पर भी जितना ध्यान उन्होंने अपने पुत्र की शिक्षा पर दिया उतना कोई धनी पुरुष भी नहीं देता। गोखले कि बुद्धि बड़ी प्रखर[2] थी। जिस पाठ को दूसरे बालक घण्टों में भी अभ्यस्त[3] नहीं कर सकते थे, गोखले उसे अनायास[4] ही कर लेता था। जब वह स्कूल में पढ़ता था तो एक दिन उसके गणिताध्यापक ने सभी श्रेणी को एक प्रश्न घर के लिए दिया। दूसरे दिन जब अध्यापक ने देखा तो सिवाय गोखले के और किसी का वह प्रश्न ठीक न था तब उसने गोखले को श्रेणी में सब से प्रथम बैठने को कहा। अध्यापक की आज्ञा सुनकर बालक गोखले फूट २ कर रोने लगा। जब उस से कारण पूछा गया तो ज्ञात हुआ कि गोखले ने उस प्रश्न का उत्तर किसी दूसरे की सहायता से निकाला था। उस अपराध[5] के प्रायश्चित्त में उसने केवल प्रथम स्थान को ही नहीं छोड़ दिया किन्तु एक सप्ताह भर वह अपनी श्रेणी में अन्तिम स्थान पर बैठता रहा। यह अभी

---

१. सुप्रतिष्ठित, अच्छी प्रतिष्ठा (मान) वाले। २ प्रखर, तीव्र।
३. अभ्यस्त करना, कण्ठस्थ करना। ४ अनायास, बिना परिश्रम। ५ अपराध, दोष।

छोटा ही था कि इसके पिता का देहान्त होगया था। फिर भी उसकी शिक्षा में कोई बाधा[1] न होने पाई उसके बड़े भाई ने उसकी शिक्षा का भार अपने ऊपर ले था। १८ वर्ष की ही अवस्था में उसने बी० ए० परीक्षा करली। उन दिनोंमें मेट्रिकुलेशनमें पंद्रह वर्ष की अवस्था प्रविष्ट होने का नियम नहीं था। गोखले का जन्म एक पुराने ढंग के परिवार में हुआ था, इसलिये जब वह का के बोर्डिङ्ग हौस में दाखिल हुए तो उन्हें एक धोती पहन स्वयं भोजन बनाना पड़ता था। परन्तु उनसे यह निया तक न चल सका और थोड़े ही दिन बाद वह दूसरे की नाई खाने पीने लग गए। कई बार अपनी वक्तृता यह कहा करते थे कि "मैं उन छात्रों का बड़ा कृतज्ञ हूं ने मुझे उस छूतछात के कीचड़ से निकाला था"।

जब वे बम्बे यूनीवर्सिटी के ग्रेजुएट बन गए तो उ भाई ने चाहा कि मि० गोखले इञ्जीनियर बन कर बड़ी कमावें, और कुलकी दरिद्रता[3] [illegible] पर और ही रङ्ग चढ़ चुका था। [illegible] की थी। पहले पहल तो उनकी [illegible] किया पर पीछे से वह भी सहमत होगई।

आरम्भ में मि० गोखले पूने के न्यू इङ्गलिश स्कूल (English School) में चालीस रु० मासिक पर अध्य बने। अध्यापक का कार्य करते हुए भी उन्हों ने स्वा

१ बाधा, विघ्न। २ वक्तृता, व्याख्यान। ३ दरिद्रता, निर्ध
[illegible] स्वाध्याय, विद्याभ्यास।

छोड़ा। अंग्रेजी के समाचार पत्रों को पढ़ने की उन्हें बड़ी
भिलाषा रहती थी। पीछे जब न्यू इंगलिश स्कूल कालिज
परिणत होगया तो वे उस में प्रोफ़ेसर बनाये गये।

मि० गोखले पहले आदमी थे जो जीवन भर के लिए
कन एज्यूकेशनल सोसाइटी' के सभासद बने। उनकी
ग्यता इतनी बढ़ गई थी कि संस्कृत को छोड़ और सभी
षयों पर वे व्याख्यान जब आवश्यकता पड़े दे दिया
रते थे। तो भी गणित तथा अर्थशास्त्र में उनकी विशेष
ति थी। कालिज के छात्रों में इनकी इतनी विख्याति हो
ई कि प्रत्येक विद्यार्थी उनके चरणों में बैठ कर पढ़ना
पना गौरव[1] समझता था। अपने कालिज के साथ मि०
खले का इतना प्यार था कि जब कभी उन्हें अवकाश
लता वे उसके लिए चन्दा एकत्रित किया करते थे। इस
कार उन्होंने अठारह बीस वर्ष तक कालिज की सेवा की।

संस्कृत में लिखा है (सत्संगतिः कथय किन्न करोति
साम्) अर्थात् सज्जनों की सङ्गति से मनुष्य क्या नहीं बन
ता। जिस समय मि० गोखले फरग्यूसन कालिज में
ाम करते थे उस समय उनका स्वर्गवासी महात्मा
नाडे से परिचय हो गया था। यह परिचय उनके
ये पारस का काम कर गया। उन्होंने मि० गोखले के
वित्र हृदय में देश सेवा का दृढ़ भाव उत्पन्न कर दिया
ा। यही नहीं, वे इनको राजनीति की शिक्षा भी दिया करते
। मि० गोखले महात्मा रानाडे को अपना राजनैतिक गुरु
हा करते थे। उन दिनों में पूना में एक सार्वजनिक सभा
ाम की संस्था थी। इसकी ओर से एक त्रैमासिक[2] पत्र

गौरव बड़ाई २ त्रैमासिक-तीन मास के बाद प्रकाशित होने वाला।

१९०२ में आपने फरग्यूसन कालिज छोड़ा और उसी वर्ष जब कि लार्ड कर्ज़न वायसराय थे, आप बड़े लाट की कौंसिल के मेम्बर हुए, और मरने के दिन तक उसी कौन्सिल के मेम्बर रहे। यों तो जिस किसी विषय पर वे विवेचन¹ करते थे उस में युक्ति और प्रमाण की कोई कसर नहीं छोड़ते थे, तो भी बजट की बहस पर उनकी वक्तृता बड़ी उच्चकक्षा² की होती थी। आपकी वक्तृता बड़े २ पाश्चात्य³ राजनीतिज्ञों से टक्कर खाती थी। आप वायसराय की कौन्सिल के भूषण थे। बिना इनके वहां के अधिवेशन⁴ फीके होते थे। जिन २ वायसरायों की कौन्सिल में इन्हें काम करना पड़ा प्रत्येक ने मुक्तकण्ठ⁵ से इनकी प्रशंसा की है। वह अर्थशास्त्र⁶ में इतने प्रवीण थे कि गवर्नर जनरल की कौन्सिल का कोई अर्थ-सचिव⁷ भी इनका उत्तर नहीं दे सकता था। जब कभी कौन्सिल में कोई ऐसा ऐक्ट (नियम) स्वीकृति के लिये उपस्थित किया गया, जो प्रजामत के विरुद्ध था तो मि० गोखले ने कटिबद्ध⁸ हो कर उसका निर्भयता से प्रतिवाद किया। आप चाहते थे कि भारतवर्ष में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य तथा निःशुल्क हो जाए। इसके लिये बड़ी कौन्सिल में एक बिल भी प्रस्तुत कर दिया, किन्तु इसमें उन्हें सफलता न हुई। उनके मरने के कुछ वर्ष बाद इनका यही बिल

---

१ विवेचन, तर्क वितर्क। २ उच्च कक्षा, उच्च श्रेणी। ३ पाश्चात्य पश्चिम-देशीय। ४ अधिवेशन बैठक। ५ मुक्त-कण्ठ खुले दिल से। ६ अर्थ शास्त्र में प्रवीण, धन-सम्बन्धी शास्त्र (Economics) में चतुर। ७ अर्थ-सचिव, वह मन्त्री जिस का धन पर अधिकार हो (Finance-Minister)। ८ कटिबद्ध, कमर बांधे हुए (तैयार)।

प्रत्येक प्रान्तीय सरकार की तरफ से प्रस्तुत हो स्वीकृत किया गया।

इधर कांग्रेस में भी आपका प्रभाव दिनों दिन बढ़ रहा था। पूना कांग्रेस के आप मन्त्री बने थे। १६०५ में कांग्रेस की ओर से विलायत में एक डेप्युटेशन गया था। आप उस डेप्युटेशन के एक सदस्य थे। पचास दिन के भीतर आपने वहां पर कोई पैंतीस व्याख्यान दिये और अनेक लेख भी लिखे। इतना भारी परिश्रम करने से आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया। विलायत से वापस आकर आप १६०५ में बनारस की कांग्रेस के सभापति बने।

इन सभी कामों से बढ़ कर जो काम मि० गोखले ने किया है वह यह है कि उन्होंने भारत सेवा-समिति (Servants of India Society) नामकी एक संस्था स्थापित की। इससे उनकी बड़ी दूरदर्शिता पाई जाती है। पहले १६०८ में आप विलायत वालों का इस देश की दशा की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए विलायत गये। दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारत वासियों पर जो अत्याचार हो रहे थे उनको नष्ट कराने के लिए आपने १६१२ में दक्षिण अफ्रीका की यात्रा की, परन्तु इसका कोई अच्छा फल न निकला। सन् १६१२ में सरकार की ओर से पबलिक सरविस कमीशन बैठा। मि० गोखले भी उसके एक सदस्य बनाये गये। उन दिनों में इनका स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ था, तो भी वह उसकी सभी बैठकों में सम्मिलित होते रहे। इस सम्बन्ध में उन्हें कई बार विलायत जाना पड़ा। इसके अतिरिक्त और भी बड़ा परिश्रम करना पड़ा। से उन का स्वास्थ्य अब और भी बिगड़ गया। यहां तक डाक्टरों के कहने से इन्हें कुछ देर तक यह काम छोड़ना

पड़ा। कुछ दिन बीमार रह कर वे सन् १९१९ में १६ फरवरी की रात्रि को परम धाम को चले गये।

मरते समय उन्होंने भारत सेवक समिति के सदस्यों को बुला कर समिति का काम सौंपा और यह अनुरोध[1] किया कि मेरे बाद मेरी कोई जीवनी न छापी जावे।

उन की मृत्यु से सारे भारतवर्ष में शोकान्धकार[2] छागया। जिसने सुना उसने बिना रोये न रहा गया। देश के सभी नगर, ग्रामों में शोक सभायें हुईं। जिस दिन वे मरे उस दिन कितने ही स्थानों में स्कूल कालिज बन्द कर दिये गये। हाई कोर्ट का काम बन्द कर दिया गया। लार्ड हार्डिंङ्ग ने बड़ी कौंन्सिल का अधिवेशन स्थगित[3] कर दिया। भारत के सम्राट् तथा प्रधान सचिव की ओर से सहानुभूति के तार आये।

कुछ दिन बाद आप का स्मारक[4] बनाने के विषय में चर्चा हुई और बहुतसा रुपया भी इकट्ठा होगया। उस में कुछ रुपया उन की एक पत्थर की मूर्ति में लग गया और शेष सेवा-समिति के स्थायी कोष में रक्खा गया।

———

१ अनुरोध, विनय-पूर्वक हठ। २ शोकान्धकार, शोकरूपी अन्धकार ३ स्थगित कर दिया। बन्द कर दिया। ४ स्मारक, यादगार
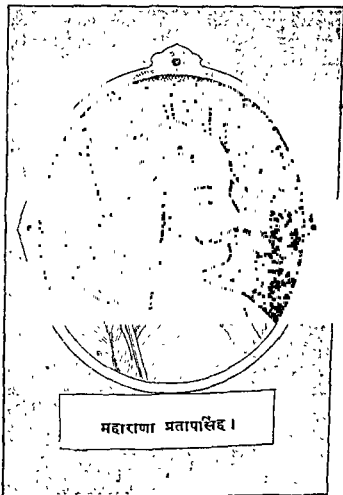
महाराणा प्रतापसिंह ।

महाराणा प्रतापसिंह ।

अपने तथा जातीय हृदय में स्वदेशाभिमान[१] की जागृति[२] कैसे होती है, मनुष्य स्वदेश प्रेम की सच्ची चट्टान[३] पर खड़ा हो कर शत्रु-समूह के बड़े२ भयंकर आघातों[४] की भी कैसे परवाह नहीं करता और कैसे आयुभर विपत्तियों में घिरे रहने पर अपने आपको उनके नीचे नहीं दबने देता, जिन्हें यह जानने की लालसा[५] हो उन्हें वीरवर महाराणा प्रताप सिंहका जीवन चरित्र पढ़ना चाहिये। यदि कोई पुरुष अपने जीवनका उद्देश्य निश्चित करनेके समय किसी आदर्श को अपने सामने रखना चाहे तो महाराणा प्रतापसिंहसे बढ़कर अधिक उज्ज्वल[६] आदर्श कहां मिलेगा ?

मेवाड़के इतिहास का महाराणा प्रताप के जीवन से इतना घनिष्ट[७] संबन्ध है कि मेवाड़ के इतिहास को ही महाराणाका जीवन-चरित्र कहना उचित होगा।

प्रतापसिंहके पिताका नाम उदयसिंह था। उदयसिंह के पिता विक्रमादित्य कोई इतने वीर न थे। इस लिये राजपूतों में उनका अधिक मान न था। उनके शासन-काल में चित्तौड़ पर मुसलमानों का अधिकार होगया था,किंतु राजपूत वीरोंको यह कैसे सह्य[८] होता था ? उन्होंने कुछ समय पीछे उसे शत्रुसे छुड़ा लिया। विक्रमादित्य से प्रजा असन्तुष्ट थी इस कारण उसे गद्दी से उतारकर पृथिवीराज के दासी-पुत्र वनवीर को गद्दीपर बैठा

---

१ स्वदेशाभिमान, अपने देशका प्रेम (patriotism) । २ जागृति, उत्थान । ३ चट्टान, शिला । ४ आघातों, प्रहारों । ५ लालसा, इच्छा । ६ उज्ज्वल, प्रकाशमान, निर्मल । ७ घनिष्ट, गहरा । ८ सह्य, सहन-योग्य ।

दिया। यद्यपि बनबीर को प्रजा की सम्मति से राज्य मिला था तो भी विक्रमादित्य और उसके पुत्र उदयसिंह का जीवित रहना उसके मन में खटकता[1] था। पहले उसने विक्रमादित्य के प्राण लिये और फिर उदयसिंह को भी मार डालने के उपाय सोचने लगा। बनबीर के ऐसे खोटे विचार देख उदयसिंह की धाय पन्ना ने उसे कमलमीर में छुपा कर उस की प्राण-रक्षा की।

प्रजाको जब उदयसिंह के जीवित होनेका वृत्तांत ज्ञात हुआ तो उन्होंने उसे मेवाड़ के सिंहासन पर बैठाना चाहा। यह देख बनबीर स्वयंही राज छोड़ दक्षिण की ओर भागगया। सन् १५४२ में उदयसिंह को मेवाड़ का राज्य तो मिल गया, परन्तु उनमें राणाओं के गुण न थे। वे सदा विषयों में आसक्त रह कर राज काज की सुध भूल बैठे थे। उस समय दिल्ली का सिंहासन अकबर के हाथ में था। वह बड़ा नीति-कुशल था। शनैः२ सभी राजपूत वीरों को उसने नीतिद्वारा वश में कर लिया और अब उसकी दृष्टि मेवाड़ पर थी। जब उसने चित्तौड़ पर प्रथम धावा किया तो उसको सफलता न हुई। सन् १५६७ में उसने फिर धावा किया। राणा उदयसिंह इतने कायर निकले कि वह चित्तौड़गढ़ को तिलाञ्जलि दे भागगये। किंतु राजपूत बापा रावल और राणा साङ्गा के नाम लेवा थे, वे चित्तौड़गढ़ की स्वाधीनता कब खो सकतेथे? जी तोड़ कर लड़े किंतु असं-
[illegible] शत्रुओं के सामने मुट्ठी भर राजपूत क्या कर सकते थे
में एक२ कर सभी ने जन्मभूमि के लिये प्राण दे दिये।

१ खटकना, कांटा, प्रतिरोधक। [illegible] लि दे, त्याग कर।

जहां राजपूतों ने अपने वीर्य्य तथा निर्भीकता का परिचय[1] दिया वहां उनकी स्त्रियों तथा कुमारियों ने उनसे कहीं बढ़ चढ़ कर शूरता दिखाई। चित्तौड़ के शत्रु के हस्तगत होने से पहले अगणित स्त्रियों ने अग्नि में भस्म होकर राजपूत कुल को कलङ्कित होने से बचाया। इस युद्ध की भयङ्करता टाड[2] साहिब के लेख से स्वयं मालूम हो जाती है। वे लिखते हैं कि इस युद्ध में मृत वीरों के यज्ञोपवीतों का तोल ७४॥ मन के लगभग था।"

इसके बाद उदयसिंह ने अकबर का आधिपत्य स्वीकार कर लिया और चित्तौरगढ़ उसे सौंप दिया। इससे उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह बहुत क्रुद्ध हुआ और इसी कारण बाप बेटे में वैमनस्य[3] रहने लगा।

सन् १५७२ में उदयसिंह का देहान्त हो गया। मरने से पहले उसने अपने चौबीस लड़कों में से सब से छोटे पुत्र जगमल को उत्तराधिकारी[4] ठहरा दिया। मेवाड़ की प्रथानुसार उदयसिंह के मरते ही जगमल को राजगद्दी दी गई। राजपूत जनता इससे बहुत असन्तुष्ट थी, क्योंकि राजपूतों की प्रथानुसार ज्येष्ठ पुत्र को ही राज्य का अधिकार होता है फिर प्रतापसिंह जैसे पुत्र? कुछ एक सरदारों ने जगमल के पास जाकर उसकी भुजा पकड़, उसे गद्दी से उतार, प्रताप-

---

१ परिचय दिया, प्रमाण दिया। २ टाड साहिब, यह प्रसिद्ध युरोपीय इतिहास-लेखक हो गुज़रे हैं। इन्होंने बड़ा महत्वपूर्ण 'राजस्थान' नामक इतिहास ग्रन्थ लिखा है। वैमनस्य, खटपट। ४ उत्तराधिकारी, मरने के बाद बड़ों की धन सम्पत्ति का मालिक। प्रथा, रिवाज, चाल।

सिंह को उस स्थान पर बिठला दिया। जगमल पहिले ही जानता था कि राज्य में अधिकार प्रतापसिंह का है इस कारण उसने चूं तक नहीं की। जिस समय प्रतापसिंह के कन्धों पर राज्य-शासन का भार रक्खा गया उस समय मेवाड़ की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। उसके पिता उदयसिंह ने मेवाड़ का दुर्ग खो दिया था, स्वयं भी वह एक तरह से अकबर के अधीन हो गया था। इसके अतिरिक्त[1] प्रायः सभी राजपूतों ने अकबर के हाथ अपनी स्वतन्त्रता बेच डाली थी। मारवाड़ का उदयसिंह उसके वश में हो गया था। बीकानेर का रायसिंह भी उसके अधीन हो चुका था। मानसिंह ने मुगल सेना के सेनापति के पद को स्वीकार कर लिया था। बूंदी तथा अजमेर के अधीश्वर भी अकबर को स्वनियन्ता[2] मान चुके थे। यही नहीं, प्रतापसिंह के ही सहोदर[3] भाई शक्तसिंह तथा सागरजी मुगलों से जा मिले थे। ये तो थी मुगलों की दशा। इधर प्रतापसिंह के पास न तो सेना थी और नहीं कोई द्रव्य था, किसी ओर से कुछ सहायता मिलने की आशा भी न थी, किन्तु मातृ-भूमि को स्वतन्त्र करने की अग्नि उसके हृदय में ऐसी प्रचण्ड[4] थी कि वह बिना इष्ट में सफलता पाये शान्त न हो सकती थी। उन्होंने यह प्रण कर लिया था कि 'जब तक चित्तौड़ का पुनरुद्धार न कर लेंगे तब तक शिर के केश, डाढ़ी, नख आदि न कटवायेंगे, स्वर्ण के पात्रों में भोजन न करेंगे, तृण शय्या पर सोयेंगे, विजय का बाजा सेना के आगे न बज कर सेना के पीछे बजा करेगा। उन्हों ने एक प्रकार

---

१ अतिरिक्त, सिवा। २ स्वनियन्ता, अपना प्रभु। सहोदर, उसी माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ। ४ प्रचण्ड थी, धधक रही थी।

का संन्यास धारण कर लिया था। उन्हें देख कर समस्त प्रजा ने भी घर बार छोड़ दिया और अर्वली पर्वत की उच्च भूमि पर एक और ग्राम कमलमीर बसा कर सब उसी में बसने लगे।

अब मेवाड़ की दशा श्मशान सी हो गई। जब यह वृत्तान्त अकबर के कानों तक पहुंचा तो उसने अपने बड़े बेटे सलीम को सेनापति बना मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। सलीम के साथ मानसिंह भी आया था। मेवाड़ तो पहिले ही उजड़ा पड़ा था। वहां उन्हें क्या मिलना था? कमलमीर तक पहुंचने में यह कठिनता थी कि उसके चारों ओर उच्च शिखर पर्वत थे। किन्तु बिना वहां तक पहुंचे और कोई उपाय न था। उधर प्रतापसिंह भी थोड़ी सी सेना ले हल्दी घाटी तक आ पहुंचा।

पहले तो मुग़ल इस विचार में थे कि प्रतापसिंह मैदान में निकल कर लड़ेगा। किन्तु प्रतापसिंह ऐसा अल्प बुद्धि[१] न था। कहां उसकी थोड़ी सी सेना और कहां सलीम के सहस्रों योधा! अन्त में मुग़लों को ही पहाड़ में घुसना पड़ा। हल्दी घाटी के पवित्र क्षेत्र में महाघनघोर युद्ध होने लगा। वीर राजपूत जी तोड़ कर लड़े। प्रतापसिंह के सहायक वृद्ध भील भी थे। उन्हों ने भी तीर चलाने में भली भांति अपना हस्त लाघव[२] दिखाया। स्वयं प्रतापसिंह अपने चेतक नामक घोड़े पर सवार होकर युद्ध करने लगे। पहले उन्हों ने मानसिंह को खूब खोजा किन्तु वह सामने न आया। फिर प्रताप का

---

१ स्वल्प-बुद्धि, थोड़ी बुद्धि वाला। २ हस्त लाघव, हाथ की सफाई।

सामना सलीम से हुआ। चेतक ने अपनी टाप हाथी की पीठ पर जमा दी। इतने में प्रताप सिंह ने भाले का एक प्रहार किया। सलीम तो बच गया, किन्तु उसके महावत के प्राण चले गये। बिना महावत हाथी सलीम को ले भाग निकला।

इस समय प्रतापसिंह मुग़ल सेना के अन्दर बहुत दूर तक घुस गये और चारों ओर मुग़ल सैनिकों में घिर गये। उनकी दशा बड़ी भीषण हो गई थी। झाला के ठाकुर माना ने जब यह दूर से देखा तो बड़ी फुर्ती से प्रताप का राज-छत्र अपने शिर के ऊपर कर लिया। इससे प्रतापसिंह को तो आत्म-रक्षा का अवकाश[1] मिल गया, किन्तु माना के प्राण न बच सके। इस प्रकार के आत्म-त्याग का उदाहरण संसार के इतिहास में विरला ही मिलेगा। इस युद्ध में प्रताप सिंह के बाईस हज़ार राजपूतों में से कोई चौदह हज़ार मारे गये। जब उन्हें विजय की कोई आशा न रही तो राजपूत सरदारों ने महाराणा से युद्ध-क्षेत्र को त्याग कर जान बचाने के लिए अनुरोध किया। अब और हो भी क्या सकता था? प्रतापसिंह उनके कहने सुनने से रण भूमि से अलग हुए और युद्ध समाप्त हुआ। यों तो विजय मुग़लों की हुई किन्तु राजपूतों के नाम सामन्यतः और महाराणा प्रताप सिंह का विशेषतः सदा के लिये अमर हो गया।

---

१ अवकाश, अवसर, मौका।

संसार भर के इतिहास में धर्मापली का युद्ध हल्दी घाटी की लड़ाई से तुलना कर सकता है।

जब प्रताप युद्ध छोड़ चले थे तो चेतक घोड़े के सिवा उनके साथ और कोई न था। दोनों अत्यन्त थान्त थे। फिर भी नदी नाले पार करते दूर निकल गये। इस के पीछे मुगल सेना के सवार भी दौड़े आ रहे थे। हल्दी घाटी के युद्ध में प्रताप सिंह का भाई शक्तसिंह भी मुगलों की तरफ से लड़ने आया था। वह अपने भाई के मातृ भूमि-प्रेम तथा वीरता देख मुग्ध हो गया। जब उसने मुगल सिपाहियों को प्रताप सिंह के पीछे उसे मारने के लिये निकलते देखा तो आप भी उसके पीछे होलिया। कुछ दूर जाकर उसने उन दोनों सवारों को मार डाला और प्रताप सिंह को पुकार कर खड़ा कर लिया। प्रताप सिंह पहले तो समझा कि शक्तसिंह मुझ से पुराना वैर निकालने आया है, किन्तु पीछे सब हाल खुल गया। शक्त सिंह ने अपने अपराधों की क्षमा मांगी। इतने में चेतक जो पहले ही घायल हो चुका था, मूर्छित हो गिर पड़ा और मर गया। इस से प्रताप को बड़ा दुःख हुआ। जिस स्थान में चेतक मरा था वह स्थान उसके नाम से प्रसिद्ध हो गया। शक्त सिंहने अपना घोड़ा प्रताप सिंह को दे दिया और वह मरे हुए सैनिकों के एक घोड़ेपर सवार होकर लौट गया। प्रताप सिंह कमलमीर में पहुंच गया। उस समय वर्षा आरम्भ होगयी थी। कमलमीर के इधर उधर नदी नाले सभी पानी से भर गये थे। इस समय राणा प्रताप को कुछ अवसर विश्राम के लिये मिल गया और उसने फिर कुछ सेना इकट्ठी करली।

पश्चात के बाद मुग़ल सेना ने फिर चढ़ाई की। कमलमे का दुर्ग घिर गया। कुछ काल तक तो राजपूत वीर लड़ रहे किन्तु जब बाहिर से सम्बन्ध बन्द हो जाने के कारण दु में पीने का पानी न रहा तो कमलमीर को भी त्यागना पड़ यह स्थान भी मुग़लों के हाथ जैसे तैसे आ गया। कमलमे को छोड़ प्रताप सिंह चाँदा नामक पहाड़ी नगर में आ रहे यह नगर पर्वत की ऊंची चोटी पर था अतः यहां पर आ मण[1] करना सहज न था। जब शत्रुओं ने इस स्थान व घेर लिया तो यह भी प्रताप सिंह को छोड़ना पड़ा। अब प्रता सिंह के लिए कोई निवास-स्थान न रहा। यदि वह अके होता तो उनको इतना कष्ट न होता। उसका सभी परिव उसके सङ्ग था अब उसकी ऐसी दशा हो गई थी कि पहा की कन्दराओं[2] में छिप कर रहना पड़ता था। जङ्गली भी ने उनके परिवार की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। व लोग उनके आहार[3] का प्रबन्ध और उनका दौत्यकर्म करते थे। कहां भीलजाति और कहां उनका प्रताप के लिए इत सेवा-भाव? यह बात प्रताप की वीरता तथा बुद्धिमत्ता का प चय देती है। कभी २ कई सप्ताह तक उसे अपने परिवार मुखदर्शन से वञ्चित रहना पड़ता था।

इस प्रकार साल पर साल बीतने लगे। केवल वर्षा ऋ में ही प्रताप को कुछ आराम मिलता, नहीं तो शत्रु उस कुछ न कुछ कष्ट सदा देते ही रहते थे। एक दिन प्रताप परिवा

---

१ आक्रमण करना, चढ़ाई करना। २ कन्दरा, गुफा। ३ आहा ाना, पीना। ४ दौत्य-कर्म दूत का काम (खबर पहुंचाने का काम

सहित भोजन कर रहा था कि इतने में एक जंगली बिलाव उसकी छोटी कन्या के हाथ से रोटी का टुकड़ा छीन ले गया। लड़की चिल्ला उठी। न जाने कितने दिनों के बाद उस बेचारी को रोटी मिली थी और वह भी उस को खाने को नहीं मिली। एक और दिन की घटना है कि प्रताप के परिवार के आगे पांच बार भोजन प्रस्तुत किया गया और पांचों बार उन्हें वह छोड़ भागना पड़ा। कई बार तो घास ही खा कर सन्तुष्ट रहना पड़ता था। कन्या का चिल्लाना सुनते ही प्रताप सिंह कांप उठे। इस संसार में ममता तथा स्नेह बन्धनों से बढ़ कर और कोई बन्धन नहीं है। जो असंख्य जाति भाइयों के हत्या दर्शन से भी विचलित न हुए थे वे आज इस छोटी सी घटना से व्याकुल हो गये और उनके सभी उद्देश्य बदल गये। तुरन्त उन्होंने अकबर के प्रति आधीनता स्वीकार करने की चिट्ठी लिखी। इस में प्रताप की कोई कायरता तथा दुर्बलता नहीं समझनी चाहिये, फिर भी वह मनुष्य था। यदि वह ऐसा न करता तो उसकी तुलना देवता भी न कर सकते।

इधर जब वह पत्र अकबर के दरबार में पहुंचा, तो मारे आनन्द के वह फूला न समाया। सारी सेना में आनन्द के बाजे बजने लगे। लोगों के हर्ष की कोई सीमा न रही। अकबर कोई मेवाड़ के राज्य के लिए लालायित न था। उसे तो प्रताप जैसे महावीर को अपने आधीन रख राज्य की शोभा बढ़ाने से काम था।

जब यह समाचार बीकानेर के राजा पृथ्वीराज तक पहुंचा तो उसने झट बादशाह से निवेदन किया, 'महाराज यह पत्र

जाली दीख पड़ता है। प्रताप कभी अधीनता स्वीकार करेगा। यदि मुझे अनुज्ञा[1] हो तो मैं अपना दूत भेज कर बात का पता लगाऊं'। बादशाह ने उसे चिट्ठी लिखने की अनु देदी। पृथ्वीराज उस समय के प्रसिद्ध कवियों में थे। उन्हों मेवाड़ी भाषा में कुछ पद्य बना कर प्रताप को एक पत्र लि जिसका अभिप्राय प्रतापके भग्नोत्साह[2] आत्मा को पुनरुज्ज वित[3] करना था। उन्होंने हिन्दुओं की दशा वर्णन करते हुए लि कि इनकी सारी आशाएं आप ही पर निर्भर हैं। यदि आ ही जी छोड़ बैठे तो संसार में उनका कोई ठिकाना नहीं। य पत्र पढ़ प्रताप का चित्त फिर उत्साहित होगया। मेवाड़ भाग्य-रूपी आकाश में जो प्रतापरूपी चन्द्र पर मेघ-खण्ड छा गया था वह पृथ्वीराज के तीव्र[4] कविता-रूपी पवन छिन्न भिन्न हो गया। फिर नभो-मण्डल में प्रतापचन्द्र पूर्वव प्रकाशित होने लगा।

'मुग़लों की आधीनता स्वीकर नहीं करना' यह त निश्चय हो ही चुका था। अब विचार यह उपस्थित हुआ कि मेवाड़ का किस तरह उद्धार किया जाय। सोच विचार करने पर भी जब उसे कोई उपाय न सूझा तो यह निश्चय किया कि मेवाड़ को सदा के लिये छोड़ देना चाहिए। इतने में भामासाह आ पहुंचे। उन्हों ने अपनी सारी सम्पत्ति प्रताप के चरणों में अर्पण कर दी। उसका इतना धन था जिससे बारह वर्ष तक २५ हज़ार सैनिकों का भोजन हो सकता था।

---

१ अनुज्ञा, अनुमति, इजाज़त। २ भग्नोत्साह, टूटे हुए हौसले वाला। ३ पुनरुज्जीवित करना, फिर जिलाना। ४ मेघ-खण्ड, के समूह। ५ तीव्र तेज़।

इस धन की सहायता से फिर सेना इकट्ठी करली पर मुगलों को इस का कुछ पता न लगा। वे निश्चिन्त[1] बैठे थे। प्रताप ने उन पर आक्रमण करके विजय प्राप्त किया और धीरे २ सब प्रान्त पुनः शत्रु से लौटा लिये। किन्तु चित्तौड़ मुगलों के ही अधीन रहा। इस लिये प्रताप के हृदय में शान्ति कहां हो सकती थी! उन्हों ने अपनी प्रतिज्ञानुसार सभी आमोद-प्रमोद[2] के साधन[3] छोड़े हुए थे और दिन रात इसी चिन्ता में डूबे रहते थे। अन्त में रोग ग्रस्त[4] हो शय्या पर पड़गये, किन्तु उन्हें शांति फिर भी नहीं मिली। सरदार सामने बैठे थे। उनमें से एक सरदार ने अशान्ति का कारण पूछा। प्रताप ने उत्तर दिया, "मुझे चिन्ता इस बात की है कि चित्तौड़ का उद्धार कौन करेगा"? उसी समय कुमार अमरसिंह ने तुरन्त हाथ जोड़कर निवेदन किया "पिताजी, मैं आपके प्रण[5] को पूरा करने की प्रतिज्ञा करता हूं" यह सुन उनको शान्ति हुई और ईश्वर का स्मरण करते २ उन्होंने सं० १६६७ में प्राण दे दिये।

वह देश धन्य है जिसमें प्रताप जैसे नरवीरों का जन्म हुआ। वह माता धन्य है जिसके स्तनों से ऐसे महापुरुषों ने दुग्ध पान किया। ऐसे महात्मा पुरुष अपने कुल को ही नहीं किन्तु अपनी जाति और देश की कीर्ति को संसार भर में उज्ज्वल और चिरस्थायी[6] कर जाते हैं।

कर्नलटाड साहिब अपनी 'राजस्थान' नामक पुस्तक में

---

१ निश्चिन्त, बेफिकर। २ आमोद-प्रमोद, भोग-विलास।
३ साधन, सामग्री। ४ रोग-ग्रस्त, रोगी। ५ प्रण, प्रतिज्ञा।
६ चिरस्थायी, देर तक रहने वाला।

लिखते हैं जिस समय कार्सिस ने ग्रीस पर चढ़ाई की थी उस समय ग्रीस लोगों ने शौर्य तथा देश-भक्ति प्रगट की थी। उसे देख सारा जगत् चकित हो गया था। परन्तु अकबर का राज्य उस समय के राज्यों में सब से बड़ा था, और उस की सेना कार्सिस की सेना की अपेक्षा अत्यन्त श्रेष्ठ थी। अतएव ऐसे बलिष्ठ शत्रु के सम्मुख २५ वर्ष तक अपार कष्ट सह कर अपना प्रण निभाना कोई सहज बात न थी। आल्प्स पर्वत-तुल्य अर्वली पर्वत का एक ऐसा स्थान भी बाकी नहीं रहा जिसको पराक्रमी प्रताप ने अपने विजय-शाली पराक्रम से पुनीत न किया हो"।

ग्रामोफोन ।

संसार के प्रायः सभी लिखे पढ़े मनुष्य इस अद्भुत यन्त्र से परिचित होंगे। इस यन्त्र को बोलने वाली मशीन (Talking-machine) भी कहते हैं। यह सत्य भी है, क्योंकि यह उसी प्रकार बोलती है जैसे कोई आदमी बोलता हो। यदि इसका आविष्कार किसी ऐसे प्राचीन समय में होता, जब कि इससे भी अधिक विस्मय-जनक[1] विज्ञान के वैज्ञानिक आविष्कार विद्यमान न थे, तो लोग इसके आविष्कारक को न जाने क्या कुछ मान बैठते ? इस यन्त्र का इतिहास बड़ा विचित्र है:—

एक दिन एडीसन साहब इस बात की खोज में लगे थे कि किस प्रकार तार-यन्त्र की खबरें बिना हाथ से लिखे हीं स्वयं लिखी जाया करें। क्योंकि उनका यह दृढ़ विचार था कि सभी सांसारिक काम जिन्हें करने में मनुष्य की अपनी सारी शारीरिक तथा मानसिक[2] शक्ति खर्च करनी पड़ती है उन्हें भौतिक पदार्थों से ही करवाना चाहिये। इसी दृढ़ विश्वास के कारण उन्होंने तार, टेलीफोन, बिजली की गाड़ी आदि अनेक यन्त्र मनुष्य की सहायता के लिये उत्पन्न कर दिये। वह इस खोज में संलग्न ही थे कि उन्हें ज्ञात हुआ कि यदि शब्द की कम्पन को किसी विधि से कागज़ पर किया जाय तो उस में से शब्द निकलता है, और वह शब्द उतना ही अधिक होता जाता है जितना वह कागज़ ऊपर को उठता जाता है, और उसका

१ विस्मय-जनक, आश्चर्य करने वाला। मानसिक, मन का।

२

एडीसन
फोन के आविष्कर्ता।

धीमा होता जाता है जितना वह कागज नीचे दबता जाता है।

एडीसन ने जब इस विषय पर और भी अनुसन्धान किया तो उसे ज्ञात हुआ कि एक कागज़ पर थोड़े २ अन्तर पर यदि कोई चीज़ चिपटा कर उस कागज़ को किसी गोल चरखी पर चिपटा दिया जाय तो उस पर किसी लोहे की कील को फेरने से उससे ऊंचे तथा धीमे शब्द निकलने लगेंगे। इसमें भी उसे पूर्ण सफलता हुई। परन्तु उसने इसे यहीं न छोड़ दिया। इसने सोचा यदि कागज़ के स्थान पर किसी धातु का पत्तर लगा दिया जाय और उस पर मनुष्य के मुंह से शब्द निकलवा कर सारलोह (फौलाद) की कील से छोटे बड़े चिन्ह किये जायँ तो फिर भी उन चिन्हों पर कील फेरने से मनुष्य के शब्द निकलने लगेंगे।

इस परीक्षा में भी वह कृत-कृत्य हुआ। अब एडीसन जैसे प्रतिभाशाली आदमी को यदि यहां तक रास्ता मिल जाय तो आगे खोज में वह कब रुक सकता है। उसने पत्तर की एक गोल चूड़ी बना कर उसे एक चरखी पर चढ़ा दिया। एक खुले मुंह की नाली बनाई जिसके नीचे के सिरे पर चमड़े की एक पतली सी झिल्ली लगाई और इसके बीच में सारलोह की एक कील लगा दी।

शब्द के सम्बन्ध में यह एक वैज्ञानिक नियम है कि मनुष्य जब मुँह से कोई शब्द निकालता है तो मुख की वायु में धीमी या ज़ोर की तरङ्गें उत्पन्न होती हैं जो बाहर की वायु में सञ्चार करती हुई सुनने वाले के कान की झिल्ली से जाकर

टकराती है। इससे वही शब्द सुनने वाले के कान में होने लगते हैं और वह समझ लेता है कि बोलने वाले ने क्या कहा है।

इस नियम के अनुसार यदि उस कील को उस चूड़ी के पत्तर के एक ओर रख दिया जाय और नली के दूसरे सिरे को मुख में पकड़ कर उसमें कोई शब्द भर दिये जाँय तो यह शब्द वायु के तरङ्ग से उस नली के दूसरी ओर की झिल्ली के साथ टकरायेंगे। उस टक्कर से वह कील उस शब्द के हलके पन वा भारीपन के अनुसार उस पत्तर पर सूक्ष्म या गहरे चिन्ह बना देगी। जब फिर दूसरी बार वह कील उस पत्तर पर फिरेगी, तो वही शब्द उन चिन्हों में से निकलने लगेंगे। इस पत्तर को रिकार्ड कहते हैं। उन शब्दों को फिर निकालने के लिए एक तो उस पत्तर को चरखी पर चढ़ाना पड़ता है दूसरे उसे हाथ से घुमा कर नली को कान से लगाना पड़ता है। अनन्तर जब कील को उस घूमती हुई चूड़ी पर घिसा जाता है तो झिल्ली पर, उस चूड़ी पर किए हुए छोटे या बड़े चिन्हों के अनुसार धक्के लगते हैं। उन से वायु की लहर उत्पन्न होकर वैसी की वैसी उस नली द्वारा सुनने वाले के कानों तक पहुँच जाती है। इस नियम के आधार पर सब ग्रामोफोन बनाए गए हैं।

सन् १८८७ ईसवी में ऐडीसन ने जब यह आविष्कार लोगों के सामने उपस्थित किया, तो संसार में बड़ा ...लन मच गया। लोगों ने ग्रामोफोन बनाने के कारखाने ...ल दिये और हज़ारों और लाखों की संख्या में ग्रामोफोन बन कर निकलने लगे।

धीरे २ एडीसन ने इन में और बहुत उन्नति कर डाली। टीन के पत्तर के स्थान में उसने एक मोम जैसे चिपचिपे पदार्थ की कुछ आगे से मोटी चूड़ियां बनाईं। इससे एक तो यह चूड़ी बदल कर एक मशीन से दूसरी मशीन पर चढ़ाई जा सकती है, दूसरे उस चूड़ी के ऊपर से एक गीत के चिन्ह खुरच कर दूसरे गीत के चिन्ह भी किये जा सकते हैं। अब एक और न्यूनता रह गई। वह यह कि मशीन को हाथ से फिराने से मशीन की चाल न्यूनाधिक होकर गीत का स्वर बिगड़ जाता था। इसके लिए एडीसन ने एक पेटी[१] बना कर उसमें एक चरखी लगा दी। यह घड़ी के कमर के समान चाबी देने से अपने आप चलती रहती है।

पहले पहल केवल नलियों को कानों में लगा कर ही गाना सुना जाता था। अब उनके स्थान में एक खुले मुंह वाला बाजे के समान भोंपू लगाया जाता है। ग्रामोफ़ोन से उसके द्वारा शब्द बाहिर निकल कर वायु-मण्डल में भर जाता है और जितने पुरुष इधर उधर बैठे हों सभी उस को सुन लेते हैं।

भारतवर्ष में तो इस से केवल गाना सुनने का काम ही लिया जाता है. परन्तु अन्य सभ्य देशों में इस से बहुत लाभ उठाए जाते हैं।

१. जब कोई व्याख्यान दाता एक बार व्याख्यान दे. उस व्याख्यान को रिकार्डों में भर कर फिर जब चाहें सुन सकते हैं।

---

१ पेटी, संदूक।

२. जब कोई मरते समय वसीयत नहीं लिख सकता तो जो कुछ उसे कहना होता है रिकार्ड में भर कर रख दिया जाता है।

३. बड़ी २ पुस्तकों को रिकार्ड में भर दिया जाता है, इस लिए कि अन्धे पुरुष बिना किसी अन्य से सुनने के उन पुस्तकों को रिकार्डों द्वारा सुन लें।

४. यदि किसी अध्यापक के पाठन समय में कोई विद्यार्थी उपस्थित न हो, तो वही पाठ ज्यों का त्यों रिकार्डों में भर सुना जा सकता है, अथवा जो लोग कालिजों की बड़ी २ फीस दे कर उनमें नहीं पढ़ सकते हैं वे उन पाठों को रिकार्डों के द्वारा पढ़ सकते हैं, ।

५. अमरीका में ऐसी घड़ियां हैं जिन पर रिकार्ड इस प्रकार चढ़ा होता है कि घंटा बजने पर घड़ी स्वयं मनुष्य की नाईं बोल उठती है और बता देती है कि क्या बजा है।

६. अमरीका के व्योपारी लोग जब चिट्ठी पत्रियों का उत्तर देने लगते हैं तो वह उन पत्रों को रिकार्डों में भर देते हैं। उन रिकार्डों को लेखक[1] उठा कर ले जाते हैं और उत्तर टाइप कर भेज देते हैं। एक तो क्लार्कों को स्वामी से बार २ पूछ कर उन्हें कष्ट नहीं देना पड़ता, दूसरे यह रिकार्ड दफ़तर में रखे जाते हैं और नकल करने की आवश्यकता नहीं रहती।

७. किसी विजातीय भाषा के शब्दों का ठीक २ उच्चारण तब तक ठीक नहीं होता जब तक उस भाषा के बोलने वाले

---

१ लेखक, क्लर्क।

से वे शब्द न सुने जायँ। यदि रिकार्ड में छोटे २ उपयोगी पाठ भर दिए जायँ तो यह कठिनाई भी दूर हो सकती है।

८. जहां अपराध होने की सम्भावना होती है, वहां गुप्तचर एक छोटा सा ग्रामोफ़ोन लगा देते हैं। जिससे अपराधियों की सारी बात चीत रिकार्ड में भर जाती है और अन्य किसी साक्षी की आवश्यकता नहीं रहती।

यूँ तो ऐडीसन ने अनेक आविष्कार किये परन्तु जगत् में जितना लाभ ग्रामोफ़ोन से हुआ, उतना किसी और से नहीं हुआ यदि लोग इधर ध्यान दें तो आगे इससे भी कई गुणा अधिक उपकार होने की सम्भावना है॥

व्योमयान नं० १
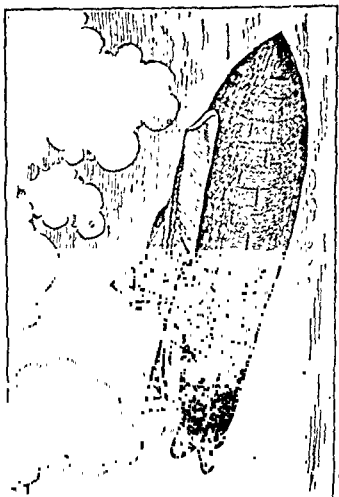
व्योमयान (Aeroplane)

जैसे पृथिवी पर सवारी के लिये पक्का गाड़ी है, जल में नौका, जहाज़ हैं, वैसे आकाश मार्ग में फिरने के लिए व्योमयान हैं। कुछ काल पहले इनका नाममात्र सुना जाता था। आज कल जैसे व्योमयान किसी ने आंखों से नहीं देखे थे। हां, गुब्बारों के आश्रय पर लोग कभी २ उड़ा करते थे। रामायण आदि संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में व्योमयानों का वर्णन आने से ज्ञात होता है कि हिन्दुस्तान के प्राचीन आर्य लोग इस विद्या से अनभिज्ञ[1] न थे। जब रामचन्द्र जी चौदह वर्ष वनवास के बाद अयोध्या को लौटे, तो वे बहुत दूर तक कुबेर के पुष्पक नामक विमान पर चढ़ कर आये थे। युनानी कथाओं में भी इसका वर्णन आता है। कहा जाता है कि ईसा के साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व जब कार्थेज नगर रिपुओं से घिर गया तो उस समय के प्रसिद्ध गणितज्ञ आरकिमीडिज़ (Archimedes) ने नगर निवासियों को आकाश मार्ग द्वारा बाहर निकलाने के लिये व्योमयान बनाये थे।

आकाश में उड़ने के लिये किसी साधन के आविष्कार[2] करने का विचार युरुप के लोगों में बहुत देर से हो रहा था किन्तु उनका इस ओर अधिक ध्यान सन् १८६७ के लगभग आकर्षित हुआ। प्रथम अमरीका में व्योमयान बनाने का उद्योग हुआ। यद्यपि प्रोफेसर लैंगली आदि ने बहुत प्रयास किया, तो भी उन्हें कुछ सफलता न हुई। कुछ वर्ष बाद लिलैन्थल तथा राइट नाम के वैज्ञानिक इस

१ अनभिज्ञ, अपरिचित। २ आविष्कार, ईजाद।

व्योमयान नं० १

व्योमयान (Aeroplane)

जैसे पृथिवी पर सवारी के लिये एक्क, गाड़ी हैं, जल में का, जहाज़ हैं, वैसे आकाश मार्ग में फिरने के लिए मयान हैं। कुछ काल पहले इनका नाममात्र सुना ा था। आज कल जैसे व्योमयान किसी ने आंखों से देखे थे। हां, गुब्बारों के आश्रय पर लोग कभी २ उड़ा ते थे। रामायण आदि संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में मयानों का वर्णन आने से ज्ञान होता है कि हिन्दुस्तान प्राचीन आर्य लोग इस विद्या से अनभिज्ञ[1] न थे। जब चन्द्र जी चौदह वर्ष वनवास के बाद अयोध्या को लौटे, वे बहुत दूर तक कुबेर के पुष्पक नामक विमान पर चढ़ आये थे। यूनानी कथाओं में भी इसका वर्णन आता है। ा जाता है कि ईसा के साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व जब यॅज नगर रिपुओं से घिर गया तो उस समय के प्रसिद्ध ज्ञतत्व आरकिमीडिज़ (Archimedes) ने नगर निवासियों आकाश मार्ग द्वारा बाहर निकलने के लिये व्योमयान ाये थे।

आकाश में उड़ने के लिये किसी साधन के आविष्कार[2] ने का विचार युरुप के लोगों में बहुत देर से हो रहा था न्तु उनका इस ओर अधिक ध्यान सन् १८६७ के लगभग कर्षित हुआ। प्रथम अमरीका में व्योमयान बनाने उद्योग हुआ। यद्यपि प्रोफेसर लैंगली आदि ने बहुत ास किया, तो भी उन्हें कुछ सफलता न हुई। कुछ बाद लिलैन्थल तथा राइट नाम के वैज्ञानिक इस

१ अनभिज्ञ, अपरिचित। २ आविष्कार, ईजाद।

व्यवसाय में कृतार्थ हुए। सब से पूर्व राइट नाम के दो भाइयों ने अमरीका में सन् १९०५ में एक बाईप्लेन (Biplane) बनाया और उस पर चढ़ कर उड़े। यह देख दूसरे लोगों का उत्साह बढ़ गया। सन् १९०६ में हेनरी फार्मन अपने बनाए वायुयान में आधे मील तक उड़ सका। सितम्बर, सन् १९०८ में आरविल राइट ने ६० मील तक व्योमयान में उड़ कर लोगों को विस्मित कर दिया। सन् १९०९ में मोनोप्लेन (Monoplane) बनने लगे। उसी वर्ष जुलाई में ब्रेरियट नामक उड़ाके को लण्डन डेली मेल (London Daily Mail) पत्र ने इङ्गलिश चैनल से पार होने का १०००) रुपयों का इनाम दिया। तब से इस विद्या में दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होने लगी। जगह जगह इनके कारखाने खुलने लगे।

इसके पश्चात् उसी पत्र ने एक दो और इनाम भी नियत किए, जिनकी "विजिगीषा" से दूर २ देशों के उड़ाकों ने दौड़ में हिस्सा लिया।

व्योमयान में अधिकतर उन्नति पिछले दस वर्षों में ही हुई है। पहले उड़ाके लोग वायु में कुछ मिनट ठहर सकते थे। अब वे घण्टों तक ठहर सकते हैं। पहले उनकी गति तीस मील प्रति घण्टा से अधिक न थी किन्तु अब उनकी गति १६० मील प्रति घण्टा तक पहुंच चुकी है। दिनों का रास्ता घण्टों में पार किया जा सकता है। कुछ वर्ष तक यदि इसी प्रकार उन्नति होती रही तो शीघ्र ही हज़ारों मनुष्य व्योमयानों में बैठकर सैर करने लगेंगे। एक दिन में ही लण्डन
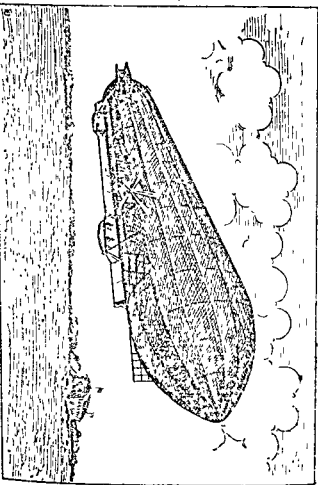
के लोग अमरीका को लौट सकेंगे। देश देशान्तरों से चिट्ठी पत्रियां उन के द्वारा एक दिन में हजारों मील यात्रा कर जाया करेंगी।

पक्षिगण को आकाश मार्ग में अनिवारित उड़ते देख कर मनुष्य बुद्धि ने उन्ही प्राकृतिक[1] सिद्धान्तों पर व्योमयान का निर्माण कर दिया।

पानी और वायु दोनों प्रवाही[2] पदार्थ हैं। परन्तु दोनों में अन्तर है। वायु से पानी लगभग एक हज़ार गुणा भारी है। पानी को यदि हम दावें तो उसका व्याप (volume) कम नहीं होता। हवा यदि दाबी जाय तो उसका व्याप प्रमाण में कम हो जाता है। अर्थात् ज्यों ज्यों वायु पर अधिकाधिक दवाव पड़ता है त्यों २ उसका व्याप कम होता जाता है। हवा लचीली भी है। रबड़ को तान कर छोड़ देने से यह अपना पूर्व रूप धारण कर लेता है। इसी उछल अथवा हवा के इस लचीलेपन पर ही अधिकांश[3] में पक्षियों का उड़ना आश्रित है। पक्षी अपने पंखों के नीचे की हवा को दवाना चाहते हैं। पंखों के नीचे की हवा ज्यों २ पूर्वरूप धारण करती है, त्यों २ वह ऊपर को उछलती है और जितने वेग से पक्षी पंख हिलाता है उतना वायु में अधिक स्पन्द होता है और पक्षी वेग से उड़ता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर व्योमयानों के लकड़ी या किसी हलकी धातु के पंख बनाये जाते हैं। जितने जल्दी पंख चलाये जायँ उतना ही शीघ्र यह उड़ता है।

अब शंका यह होती है कि व्योमयान वायु के ऊपर ठहर कैसे सकता है। यह वैज्ञानिक सिद्धान्त[4] है कि एक ही आयतन[5]

---

१ प्राकृतिक, प्रकृति संबंधी। २ प्रवाही, बहने वाले। ३ अधिकांश, ज़्यादातर। ४ सिद्धान्त, नियम। ५ आयतन, लंबाई-चौड़ाई।

दो पदार्थों में से हलका पदार्थ भारी पदार्थ के ऊपर ा है। यदि हम लोहे के एक छोटे से टुकड़े को पानी ों तो वह नीचे डूब जायगा। इस का कारण यह कि लोहा पानी से भारी है परन्तु यदि उसी लोहे टुकड़े की एक कागज़ के समान बड़ी पतली चद्दर कर उसे पानी में डालें तो वह चद्दर पानी के ऊपर लेगी। इसका हेतु[1] यह है कि उस लोहे का भार वही परन्तु आयतन बढ़ गया है अब उसने अपने नीचे पहले अधिक पानी दबाया हुआ है जो उस चद्दर से भारी है। सिद्धान्त पर जहाज़ समुद्र में चलते हैं। वे तब तक में तैर सकते हैं जब तक उनका परिमाण पानी से का हो। यदि जहाज़ में इतने मनुष्य तथा माल असबाब दिया जाय कि उस का भार उस जहाज़ के नीचे के पानी बढ़ जाय तो जहाज़ डूब जायगा। जो दशा पानी और ज़ों की है वही दशा वायु और व्योमयानों की है। युयान नीचे की वायु से जितना हलके होंगे उतना बिना ठनता के उस वायु के आधार पर उड़ सकेंगे।

कुछ वर्ष पहले मनुष्यों का प्रायः यह विचार था कि जितने ार्थ संसार में हैं सभी वायु से भारी हैं। इस लिये वायु-नों को वायु से हलका बनाकर आकाश में उड़ना असम्भव प्रतीत होता था। परन्तु ज्यों ही हाइड्रोजन तथा कोल स जैसे वायु से हलके पदार्थ मनुष्य को मिले वायुयान ाने के रास्ते में से सभी बाधायें[2] जाती रहीं। कोल गैस

---

[1] हेतु, कारण [2] बाधायें, कठिनाइयां

गुब्बारे
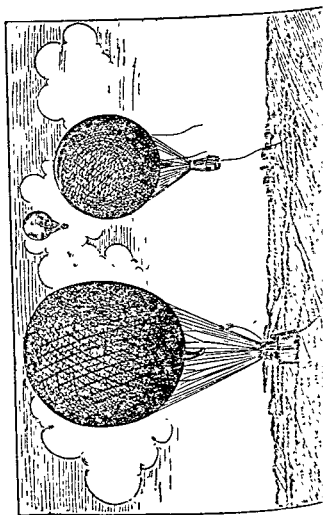
या हाइड्रोजन वायु से कई गुणा हलकी होती है, इस कारण व्योमयानों में बहुत से ऐसे स्थान रहते हैं जिनमें से वायु को वायु-निष्कासन यन्त्र (Airpump) द्वारा निकाल कर उन में कोल गैस या हाइड्रोजन गैस भर देते हैं। इस लिए उनका साधारण भार कम होजाता है। वायुयान को चलाने के लिए उन में कई घोड़ों जितने बल वाले इञ्जिन लगे रहते हैं। जब उनको चलाया जाय तो वायुयान चलने लगता है। आरम्भ में वायुयान बांस, राश जैसी हलकी लकड़ी के बनाये गये थे। परन्तु अब उनके स्थान में फौलाद तथा एल्यूमिनियम आदि धातु का उपयोग किया जाता है। बाकी रहा व्योमयानों को इधर उधर, ऊपर नीचे मोड़ना, इसके लिए व्योमयानों में यन्त्र लगे होते हैं।

व्योमयानों में एक यन्त्र लगा रहता है जिसे उद्धारक यंत्र (Elevator) कहते हैं। इसकी सहायता से इसे ऊपर उठाते हैं और नीचे उतारते हैं। जब उद्धारक-यन्त्र को ऊपर को उठाते हैं, तो वायुयान और ऊपर को उठने लगता है, और जब इसे नीचे की ओर दबाते हैं, तो वह नीचे की ओर उतरता है। शीर्ष पतवार (Vertical Rudder) की सहायता से वायुयान दाईं बाईं ओर फिर जाते हैं।

वायुयानों से जितना काम युद्ध के समय में निकलता है उतना शान्ति के समय में नहीं। शत्रु कहां है? और कितने हैं? उनकी भोजन-सामग्री कहां एकत्रित है? किधर से वे धावा करना चाहते हैं? युद्ध के समय ऐसी बातों का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है जो वायुयानों द्वारा सुगमता से

हो सकता है। पिछले युरोप के महायुद्ध में वायुयानों से काम भली प्रकार लिये गये थे।

इस कारण जितनी उन्नति व्योमयानों की युद्ध के वर्षों में हुई उतना ४० वर्षों में भी न होती।

वायुयान कई प्रकार के होते हैं।

बाक्स काइट (Box kite)–यह पतंग के समान बना है। जब वायुयान पहले पहल बनने लगे तो ये इसी के बनते थे।

ग्लाइडर (Glider)–बाक्स काइट में थोड़ा सा फेर कर के ग्लाइडर बनाया गया। ग्लाइडर में दो पंख एक के ऊपर रहते हैं।

वायुयान (Aeroplane)–ग्लाइडर के रूप में कुछ न तथा आकार में कुछ वृद्धि कर के वायुयान बनाये वायुयानों के तीन भेद हैं। एक-पक्षी (Monoplane) दो (Biplane) और तिपक्षी (Triplane)। मौनोप्लेन में एक पंख लगा होता है। इसका आकार चिड़ियों बहुत कुछ मिलता जुलता है। यह बाइप्लेन से सुन्दर है। बाइप्लेन के दो पंख होते हैं और सामने की ओर एक यन्त्र लगा रहता।

तीन पंखों वाले यान ट्राइप्लेन कहलाते हैं।

हाइड्रो एयरोप्लेन (Hydro Aeroplanes, वायुयान बनाये गये हैं कि अवश्यकता होने पर तैर भी हैं। जैसे साधारण वायुयान पृथ्वी से उड़ कर

पर उतरते हैं वैसे ही ये पानी से उड़कर पानी में भी उतर सकते हैं। जब कोई जहाज़ डूबने लगे तो यह बड़ा काम कर सकते हैं। जहाज़ के बहुत से यात्रियों तथा उन के माल असबाब को बचा सकते हैं। इन से चरों[1] का काम लेने का भी विचार हो रहा है।

इनके अतिरिक्त जर्मनी ने ज़ैपलिन नामक वायुयान बनाये थे। ज़ैपलिन नाम का एक जर्मन वैज्ञानिक था, उसने ये बनाये थे। लम्बाई चौड़ाई में ये दूसरे वायुयानों से बहुत बढ़ चढ़ कर हैं। किसी २ ज़ैपलिन की लम्बाई ५०० फीट से भी अधिक होती है। ज़ैपलिन का प्रायः ६० मन भार होता है। उस में ७० मन बोझ लादा जा सकता है। इसकी गति ६० मील प्रति घण्टा है। इन के चलाने के इंजिन में ३४७ घोड़ों जितना बल होता है। इन्हीं जहाज़ों से जर्मनी ने बहुत बार लण्डन तथा अन्य नगरवासी निःशस्त्र[2] लोगों पर बम्ब-वर्षा की थी।

किसी अंश में वायुयान हानिकारक भी हैं। आकाश में उड़ते २ यदि कहीं कोई इंजिन टूट जाय या गैस की पेटी फट जाय तो सभी यात्रियों के प्राण जाने की सम्भावना है।

---

१ चरों, दूतों। २ निश्शस्त्र, बेहथियार।

आलू की खेती।

सन् १५८५ से पहले केवल अमरीका में ही आलू बो जाते थे। इंगलैण्ड को यह ध्यान भी न था कि आलू भी को वस्तु होती है। रानी अलेजिबेथ के काल में सर वाटलर रे साहब आलू के बीज इंगलैण्ड में लाये। कुछ समय तक इ पशुओं का ही खाना समझा गया। शनैः २ इसका प्रचा इंगलैण्ड से होते २ सारे संसार में फैल गया। अब तो इसव प्रचार इतना बढ़ गया कि कतिपय देशों में आलुओं के बि निर्वाह[1] होना कठिन है। यदि किसी वर्ष आलुओं की खे न हो सके तो वहां दुर्भिक्ष[2] पड़ जाता है।

स्वादिष्ट होने के अतिरिक्त यह बड़े पौष्टिक तथा पाच होते हैं। और तरकारियां एक दो दिन पड़ी रहने से स जाती हैं, परन्तु ये यदि संभाल कर रक्खे जायें तो साल भ नहीं सड़ते। अतः युद्ध में सैनिकों को भोजन सामग्री में त कारियों में से केवल आलू देने का प्रबन्ध किया जाता है भारतवर्ष में इनके खाने का इतना प्रचार बढ़ गया है ि व्रतों के दिनों में भी उन्हें लोग खाया करते हैं।

आलू के बोने का उत्तम काल वर्षा का अन्तिम समय है न तो यह गर्मी की कड़ी धूप को सह सकते हैं और जाड़े के घोर शीत को, और न अधिक वर्षा में ये उत्पन्न ह सकते हैं। आलू प्रायः वर्ष भर मिलते रहते हैं। इसका कार यह है कि जिन दिनों में यह नीचे नहीं उग सकते उन दि

१ निर्वाह, गुज़ारा। २ दुर्भिक्ष अकाल।

में पहाड़ी जल वायु इनके अनुकूल होती है, और यह वहां उगाये जाते हैं। जो पहाड़ी गांव या नगर रेलके पास होते हैं उन में आलुओं की बड़ी मंडियां होती हैं।

जिन खेतों में आलू की फसल होती है, उनमें एक फसल आलू के पूर्व और एक आलू के बाद बोई जाती है। आलू के बोने के लिये धरती ऊंची और नरम होनी चाहिये। और खेतों से आलू का खेत गहरा बोया जाता है। मिट्टीमें से ईंट, पत्थर, कंकर आदि सभी चुनकर फेंक दिये जाते हैं।

इसमें खाद विशेषकर अधिक देनी पड़ती है। जितनी खाद अधिक दी जाती है, उतने ही आलू बड़े और अधिक परिमाण में होते हैं।

खेत में छोटी २ क्यारियां बनाई जाती हैं, और उन में आधे या पौने फुट की दूरी पर आलू के बीज बोये जाते हैं। बीज के लिये अच्छे आलू होने चाहियें, क्योंकि यदि सड़े गले आलू बोये जायँ तो उन में कीड़ा लग जाने की सम्भावना है। बोने के पीछे उन पर छः इंच मिट्टी डाली जाती है॥

जिन आलुओं में फुरे फूट आये हों वे बोने के योग्य नहीं होते। इस लिये अँधेरी कोठरी में रेत बिछाकर उस में उन को दबा देते हैं। यदि रेत में पड़े २ कुछ आलू सड़ जायें तो उन को निकालकर तुरन्त फेंक देना चाहिये, नहीं तो वह आसपास के सभी आलुओं को बिगाड़ देते हैं। ऐसा करनेसे एक सप्ताह के बाद आलुओं के फुरे फूट आते हैं और वह बोने योग्य हो जाते हैं॥

बोने के आठ दस दिन बाद छोटे पौधे निकलने लग

सर आइज़क न्यूटन ।

न्यूटन का जन्म लिंकन शहर के एक छोटे से गांव में सन् १६४२ में हुआ था। इनके जन्म से पूर्व ही इन के पिता का देहान्त हो चुका था। शैशवावस्था[1] में यह प्रायः रोगी रहा करते थे। बचपन से ही इन का मन पढ़ने में कम लगता था। ये बड़े क्रीड़ाप्रिय थे। एक दिन वे एक पतङ्ग में छोटा सा लैम्प बांध कर उड़ाने लगे, इसलिये कि लोगों को उस से किसी नक्षत्र का भ्रम हो। यह देख इन की माता ने विवश होकर इन का सम्बंध पाठशाला से छुड़ा दिया और निश्चय किया कि न्यूटन को अपने घर की खेती बाड़ी का काम करना चाहिये। प्रतिसप्ताह[2] उन्हें एक नौकर के साथ ग्रेनथम के बाज़ार में क्रय-विक्रय के लिये भेजा जाया करता था। उन्होंने नौकर को किसी प्रकार क्रय-विक्रय का काम करने पर राज़ी कर लिया और आप एकान्त में बैठ उस समय को एकाग्र[3] चित्त से पुस्तक पढ़ने में लगाने लगे। पुस्तक पढ़ने के अतिरिक्त उन्होंने छोटे २ वैज्ञानिक आविष्कार करने भी प्रारम्भ कर दिये। न्यूटन ने प्रथम एक जल-घड़ी बनाई, जो ठीक २ समय बताती थी। अपने घर की भीत पर इन्होंने धूप-घड़ियां बना रक्खी थीं जिन पर धूप की गति की रेखा से समय ज्ञान हो जाता था। यही घड़ी सन् १८४४ में रायल सोसायटी को अर्पण की गई।

आइज़क के ये बच्चों के ऐसे खेल इनकी सरल स्वभाव[4]

---

१ शैशवावस्था, बचपन। २ प्रतिसप्ताह, हर हफ्ते में। ३ एकाग्रचित से, ध्यान लगा कर। सरल-स्वभाव, सीधे स्वभाव वाले।

जाते हैं, परन्तु जब तक ये न निकलें तब तक क्यारियों में थोड़ा २ पानी देते रहना चाहिये। पौदे निकलने के बाद भी कभी २ पानी देना पड़ता है, नहीं तो पौदों के सूख जाने का डर रहता है। थोड़े दिन बाद जब उनकी पत्तियां पीली होने लगती हैं तो समझना चाहिये कि आलू पकने लगे हैं। परन्तु जब तक पत्तियां मुरझा न जावें, तब तक बीच २ में पानी अवश्य देते रहना चाहिये।

यदि पेड़ों में फूल निकल आयें या पेड़ बहुत बढ़ जावें तो उनको छांट देना चाहिये, ऐसा करने से उपज बहुत होती है।

आलू के पौदे को बहुत झुकने न देना चाहिये, क्यों कि ऐसा होनेसे उपज कम हो जाती है। अतः पौदे के बढ़ने के साथ ही साथ उसकी जड़ों पर मिट्टी डालते रहना चाहिये। मिट्टी डालते समय पौधों को किसी तरह की हानि न होने पावे। नहीं तो सभी किया कराया काम मिट्टीमें मिल जायगा। पुष्टि के लिये पौदों की जड़ों में कभी २ खाद डालना चाहिये।

जब पौदे सूख जाते हैं तो आलू खोद कर निकाल लिये जाते हैं। एक ही खेत में बहुत वर्षों तक निरन्तर आलू बोये जानेसे आलुओं में कीड़ा लग जाने तथा उनके सड़ जाने की सम्भावना है। यदि खेत बिगड़ जाय, तो उसमें दो तीन बार कोई और वस्तु बोकर फिर आलू बोने चाहिये। एक अच्छे पौदे के नीचे दो तीन सेर तक आलू निकलते हैं। एक बीघे खेत में चार पांच मन से अधिक आलू उपज सकते हैं। आलू की खेती में जितना रुपया खर्च होता है उस से दुगने मूल्य के

सर आइज़क न्यूटन।

न्यूटन का जन्म लिंकन शहर के एक छोटे से गांव में सन् १६४२ में हुआ था। इनके जन्म से पूर्व ही इन के पिता का देहान्त हो चुका था। शैशवावस्था[1] में यह प्रायः रोगी रहा करते थे। बचपन से ही इन का मन पढ़ने में कम लगता था। ये बड़े क्रीड़ाप्रिय थे। एक दिन ये एक पतङ्ग में छोटा सा लैम्प बांध कर उड़ाने लगे इसलिये कि लोगों को उस से किसी नक्षत्र का भ्रम हो। यह देख इन की माता ने विवश होकर इन का सम्बध पाठशाला से छुड़ा दिया और निश्चय किया कि न्यूटन को अपने घर की खेती बाड़ी का काम करना चाहिये। प्रतिसप्ताह[2] उन्हें एक नौकर के साथ ग्रेनथम के बाज़ार में क्रय-विक्रय के लिये भेजा जाया करता था। उन्हों ने नौकर को किसी प्रकार क्रय-विक्रय का काम करने पर राज़ी कर लिया और आप एकान्त में बैठ उस समय को एकाग्र[3] चित्त से पुस्तक पढ़ने में लगाने लगे। पुस्तक पढ़ने के अतिरिक्त उन्होंने छोटे २ वैज्ञानिक आविष्कार करने भी प्रारम्भ कर दिये। न्यूटन ने प्रथम एक जल-घड़ी बनाई. जो ठीक २ समय बताती थी। अपने घर की भीत पर इन्होंने धूप-घड़ियां बना रक्खी थीं जिन पर धूप की गति की रेखा से समय ज्ञान हो जाता था। यही घड़ी सन् १८४४ में रायल सोसायटी को अर्पण की गई।

आइज़क के ये बच्चों के ऐसे खेल इनकी सरल स्वभाव[4]

---

१ शैशवावस्था, बचपन। २ प्रतिसप्ताह, हर हफ्ते में। ३ एकाग्रचित से, ध्यान लगा कर। सरल-स्वभाव, सीधे स्वभाव वाले।

सर आइजक न्यूटन।

माता को अच्छे नहीं लगते थे। उन्हों ने अपने भाई से कहा कि आइज़क बड़ा बहरा होगया है। आइज़क के मामा एक विद्वान पादरी थे। बहिन की बातों से वह ताड़ गये कि आइज़क बड़ा प्रतिभासम्पन्न युवक है। उन के आग्रह से फिर न्यूटन को कुछ समय के लिये प्रथम पाठशाला में और पश्चात् कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय[1] में भेजा गया। स्कूल-शिक्षा को समाप्त कर उन्हों ने ट्रिनिटी कालेज कैम्ब्रिज में प्रवेश किया। इस समय यद्यपि न्यूटन को भाषा का कुछ बोध होगया था, परन्तु गणित और पदार्थ विज्ञान को बहुत कम जानते थे। इस लिये इन्हों ने गणित का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। थोड़े समय में ही उनकी गणित में इतनी प्रवृत्ति[2] हो गई कि अब उन्हें गणित के सिवा और कुछ अच्छा नहीं लगता था। गणित में उन्हों ने बहुत से नये सिद्धान्तों को खोज निकाला। सन् १६६४ में उन्हों ने चन्द्रमा के चारों ओर प्रभा-मण्डल देखा और उसके विषय में अपना एक सिद्धान्त नियत किया। इसी वर्ष वह बी. ए. परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। एक वर्ष बाद सन् १६६५ में प्लेग-प्रकोप के कारण इन्हें कैम्ब्रिज छोड़ना पड़ा।

गैलीलियो के सिद्धान्तों पर उन्होंने अपने सिद्धान्तों को स्थिर रक्खा। गैलीलियो के ये सिद्धान्त हैं:—

(१) यदि किसी चलते पदार्थ को रोकने वाली कोई शक्ति न हो तो वह चलता ही रहेगा। यदि एक गेंद किसी

---

१ विश्व-विद्यालय, यूनिवर्सिटी। २ प्रवृत्ति, झुकाव।

चिकने स्थल पर लुढ़काया जाय तो वह बराबर लुढ़कता जायगा रुकेगा नहीं।

(२) जब कोई शक्ति किसी पदार्थ पर काम करने लगती है तो वह शक्ति उस पदार्थ की शक्ति को अपनी वित्त[१] के अनुसार उसी ओर बदल देती है जिधर वह प्रवृत्त होती है। जैसे एक गेंद बाहुद्वारा जिस ओर जिस वेग से फेंका जायगा उसी ओर उसी वेग से जायगा।

(३) आघात[२] और प्रत्याघात[३] बराबर होते हैं। जैसे जिस वेग से गेंद दीवार पर मारा जाय उसी वेग से भीत गेंद को दूर फेंकती है।

न्यूटन ने इन सिद्धान्तों का इतना परिष्कार[४] कर डाला कि अब वेही सिद्धान्त न्यूटन के नाम से प्रसिद्ध हैं।

पुराने वैज्ञानिकों का विचार था कि गतिको अविच्छिन्न[५] रखने के लिये किसी दूसरी शक्ति का प्रयोग आवश्यक है, परन्तु अब इसके विपरीत सिद्ध हुआ है। अब यह सिद्धान्त स्थिर हो चुका है कि गति को रोकने के लिए शक्ति की आवश्यकता है प्रवृत्त रखने के लिए नहीं। जैसे शून्य आकाश में नक्षत्र-गण विना किसी वाह्य शक्ति की सहायता के निरन्तर चलते रहते हैं।

अब न्यूटन के सामने एक दूसरा प्रश्न उपस्थित हुआ। उन्हें शङ्का हुई कि वह कौन शक्ति है जो ग्रहों को सीधा जाने देने के बदले दीर्घ वृत में घुमाती है। बहुत खोज करने

१ वित्त, शक्ति। २ आघात, धक्का। ३ प्रत्याघात, उलटा धक्का। परिष्कार, सुधार। अविच्छिन्न, बेरोक टोक।

के बाद उन्हें ऊपर लिखे हुए गति के दूसरे नियम से सहायता मिली। तदनुसार उन्हें निश्चय हो गया कि यह शक्ति त्रिज्या (Radius) से केन्द्र (Centre) की ओर काम करती है। जब हम पत्थर के एक छोटे से टुकड़े को डोरी से बांध कर अपने चारों ओर घुमाते हैं, तब हम देखते हैं कि हाथ पत्थर को अपनी तरफ खींचता है और एक दूसरी शक्ति पत्थर को उलटा दूसरी ओर खींचती है। इस नियम के आधार पर न्यूटन ने यह सिद्धान्त ठहराया कि समस्त सौर जगत् का एक मात्र आधार सूर्य है। वही सर्व तारागण का एक केन्द्र है। तारागण उस के चारों ओर घूमते रहते हैं और उपग्रह[1] भी अपने ग्रहों के चारों ओर इस ग्रह की आकर्षण शक्ति से घूमते हैं। इस सिद्धान्त की पुष्टि में उन्हें एक और प्रमाण मिल गया। एक दिन वे बाग में बैठे थे कि अचानक एक सेब पेड़ से पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देखते ही न्यूटन को तुरन्त सूझ गया कि यह वही शक्ति है। यदि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति न होती तो फल नीचे ही क्यों गिरता? इस समय उनकी अवस्था २३ वर्ष की थी।

उन्होंने यह सिद्ध किया है कि श्वेत प्रकाश सात रङ्गों से मिल कर बनता है जैसा त्रिपार्श्व (prism) में दिखाई देता है। रङ्ग किसी वस्तु में नहीं होता, किन्तु प्रकाश में होता है। जो किसी वस्तु में एक रङ्ग दिखाई देता है उसका अभिप्राय यह है कि वह वस्तु सिवाय उस रङ्ग के और सब रङ्गों को अपने भीतर ग्रस लेती है। जैसे वृक्ष के हरे पत्तों में हरे

---

१ उपग्रह, छोटे तारे।

सोना, बैठना, खाना, पीना, सभी भूल जाते थे। उनके विषय में कहा जाता है कि एक दिन कोई मित्र उनसे मिलने आया। वे घर नहीं थे और उनका भोजन मेज़ पर परोसा हुआ था। उनके मित्र ने वह खाना खा लिया और खाली बर्तनों को फिर उसी प्रकार ढक दिया। जब न्यूटन ने खाली पात्रों को देखा तो कहने लगे मैं तो समझा था कि मैंने भोजन नहीं किया, परन्तु ज्ञात होता है कि मैं भोजन कर चुका हूँ"

उन्होंने प्रिन्सिपिया (principia) नामक एक ग्रन्थ लिखा जो बड़ा महत्त्व-पूर्ण है।

सन् १६८३ में रायल सोसायटी के सम्मुख आकर्षण (Gravitation) के विषय में कुछ चर्चा होने लगी। उस समय के वैज्ञानिक रेन हुक, हेली आदि में खूब विचार हुआ। हेली ने न्यूटन के पास जाकर इसी विषय पर बात चीत चलाई। इसी बात चीत में विदित हुआ कि न्यूटन इस पर और इस जैसे कोई अन्य तत्त्वों पर पहले से ही पूरी पूरी खोज कर चुके हैं। न्यूटन ने सब गति सम्बन्धी लेख हेली को दिखलाये और हेली के अनुरोध[1] से उन्हें छपवाने की भी अनुमति दी। यह सभी प्रिन्सिपिया में छप गये। इसके लिये संसार भर को हेली का कृतज्ञ होना चाहिये।

इस समय न्यूटन की आयु लगभग ४४ वर्ष की थी। अब उनकी कीर्ति उत्तरोत्तर[2] बढ़ने लगी। देश देशान्तरों में

---

१ अनुरोध, आग्रह तथा विनय से कहना। २ उत्तरोत्तर, क्रम से ज्यादा।

उनकी ख्याति हो गई। जहां एक ओर लोग उनके गुणों की प्रशंसा करने लगे दूसरी ओर उनकी पुस्तकों के छपने से कुछ विद्वानों के हृदयों में इर्ष्या की आग भड़क उठी और उनकी पुस्तकों पर आक्षेप होने लगे। कुछ स्तुति करते थे तो कुछ निन्दा भी करते थे। न्यूटन प्रपंची मनुष्यों के वास्तविक[1] स्वभाव से अनभिज्ञ थे। इस कारण उन्हें अपनी अनुचित निन्दा सुन अधिक मानसिक वेदना[2] होती थी।

कुछ काल तक न्यूटन पार्लमेंट के मेम्बर भी रहे।

इस समय न्यूटन की आर्थिक[3] दशा कुछ अच्छी न थी। इस लिए उनका बहुत सा समय विद्यार्थियों को पढ़ा कर आजीविकार्थ द्रव्य कमाने में लग जाता था। जब यह समाचार उस समय की गवर्नमेण्ट के कानों तक पहुंचाया गया तो उस ने न्यूटन को एक अच्छे वेतन वाले पद पर नियुक्त कर दिया।

न्यूटन का देहान्त ८५ वर्ष की आयु में हुआ। उनके श्वेत बालों का एक गुच्छा अब तक ट्रिनिटी कालेज के पुस्तकालय में रक्खा हुआ है। उनका शव वेस्टमिनिस्टर एबी में स्थापित किया गया था।

न्यूटन इङ्गलैण्ड में ऐसे समय में उत्पन्न हुआ था जब कि बड़े २ वैज्ञानिकों की वहां न्यूनता न थी। राबर्ट ब्यायल क्रिसटोफर रेन, राबर्ट हुक आदि सभी विद्वान १७वीं सदी में हो गए हैं। न्यूटन को इनके आविष्कार तथा सिद्धान्तों

---

१ वास्तविक, असली। २ वेदना, दर्द। ३ आर्थिक, धन-सम्बन्धी।

सहायता तो अवश्य मिली होगी, परन्तु यदि न्यूटन के
न में यह लोग न होते तो उनकी कीर्ति और यश इससे
कई गुणा बढ़ चढ़ कर होते।

संसार के नभोमण्डल में न्यूटन सूर्यवत् प्रकाश कर गए
सृष्टि-तत्वों की जितनी खोज उन्होंने की उतनी और
सी ने नहीं की और अपने कर्म में जितने कृतकार्य[1] वह
उतना और कोई नहीं हुआ।

न्यूटन बड़े शान्त-स्वभाव तथा सरल-हृदय पुरुष थे।
अन्त तक अविवाहित रहे। गर्व का उनमें लेश न था।
ने विषय में उन्होंने कहा था कि संसार मेरे विषय में
हे कुछ ही कहे, परन्तु मुझे विश्वास है कि मैं उस बालक
समान हूं जो समुद्र के किनारे खेल रहा हो। कभी उसे
ई गोल चिकने पत्थर का टुकड़ा मिल जाता है और कभी
ई रंगीन कौड़ी, परन्तु उसके सामने ज्ञान का असीम[2]
र अगाध समुद्र वैसे ही लहरें मार रहा है।"

---

१ कृतकार्य, सफल। २ असीम अपार।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म काशी के एक अत्युच्च[1] विख्यात वैश्यकुल में भाद्रपद शुक्ल द्वादशी संवत् १९० में हुआ था। इनके पिता का नाम बाबू गोपालचन्द्र उपनाम बाबू गिरिधरदास था। बाबू गोपालचन्द्र एक बड़े प्रसिद्ध कवि होचुके हैं। हरिश्चन्द्र पांच ही वर्ष के थे कि सं० १९१२ इनकी माता का देहान्त हो गया। इसलिए इनके पालन पोषण का भार इनके पिता को उठाना पड़ा। पांच वर्ष पी वे भी चल बसे। अब बालक हरिश्चन्द्र की दशा उस लता समान हो गई जो कि अपने आश्रय[2] रूप वृक्ष के कट ज से भूमि पर गिर पड़ी है। इनके पिता अच्छे सम्पन्न थे। ज वे मरे तो लाखों की पैतृक-सम्पत्ति[3] हरिश्चन्द्र के हाथ आ दश वर्ष की आयु में वे सम्पन्न, स्वच्छन्द[4] बालक हो गये इसी कारण इनके बिगड़ जाने का बहुत भय था।

हरिश्चन्द्र बड़े प्रतिभाशाली थे। बचपन ही से इन कविता में रुचि थी। अंग्रेजी भाषा के प्रसिद्ध कवि पोप विषय में कहा जाता है कि दस बारह वर्ष की आयु में अंग्रेज़ी कविता करने लग गए थे परन्तु हरिश्चन्द्र ने प वर्ष की आयु में ही, जब कि बालकों को स्पष्ट बोल भी नहीं आता—यह दोहा बनाया था—

ले ब्योड़ा ठाढ़े भये, श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सैन को हनन लगे भगवान॥

---

१ अत्युच्च, बहुत ऊंचे। २ आश्रयरूप, सहारा देने वा पैतृक सम्पत्ति, पिता की धन दौलत। ४ स्वच्छन्द स्वाधी

हरिश्चन्द्र।

बाल्यावस्था में ये बड़े उपद्रवी थे। इनका मन पढ़
बहुत कम लगता था, तो भी उन्हों ने किसी न किसी प्र
से हिन्दी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी में अच्छी योग्यता प्राप्त कर
इनकी बुद्धि इतनी तेज़ थी कि जब ये स्कूल वा कालेज
पढ़ते थे, तो किसी सहपाठी[1] को अपने से पहला नहीं
देते थे। यह देख सारे छात्र-गण तथा अध्यापक-वर्ग
विस्मय होता था।

अभी ये ग्यारह वर्षके ही थे तो इनके चित्त में तीर्थ
की उमङ्ग उठी। ध्यान आते ही पढ़ना छोड़ जगन्नाथपुरी
यात्रा को चले। इस प्रकार यात्रा करते २ इन्हों ने क
महाराष्ट्रीय, बंगला, गुजराती तथा मारवाड़ी आदि भा
बिना परिश्रम सीख लीं॥

चौदह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह बाबू गुला
की कन्या मन्नो देवी से होगया और उससे इनके दो पुत्र
एक कन्या हुई॥

इनमें स्वदेश-प्रेम की मात्रा[2] अधिक थी। इनके क
तथा अन्य कार्यों में स्वदेश-प्रेमके अधिक उदाहरण मिल
सं०१९२३ में इन्हों ने चौखम्भा स्कूल स्थापित
जिसमें बिना शुल्क शिक्षा दी जाती थी, तथा असमर्थ
को भोजन वस्त्र और पुस्तक आदि मिलते थे॥

इनके चित्त में अब कविता-प्रचार का विचार हुआ।
कारण सं० १९२५ में इन्हों ने एक कवि-वचन-सुधा न
मासिक पत्र निकाला। कुछ काल तक तो केवल कविता

१ सहपाठी, सहाध्यायी (साथ पढ़ने वाले)। २ मात्रा, अं

उसमें प्रकाशित होती रहीं। फिर उसे क्रमशः मासिक और साप्ताहिक कर दिया गया और उसमें सामाजिक तथा राजनैतिक लेख भी निकलने लगे। सं० १६३० में एक और मासिक पत्र निकाला जिसका नाम हरिश्चन्द्र-मेगज़ीन था। उसी वर्ष गवर्नमेएट की इच्छानुसार स्त्रियों के उपकारार्थ बालबोधिनी नामक एक मासिकपत्रिका भी निकाली, किंतु वह केवल चार वर्ष ही चल सकी। जब इन उपायोंसे कविता की उन्नति होती न दीख पड़ी तो इन्हों ने एक दूसरा ढङ्ग निकाला। सं १६२७ में उन्हों ने एक कविता-वर्धिनी सभा स्थापित की और उसमें जो लोग अच्छी कवितायें बनाकर पढ़ते थे, उन्हें पुरस्कार[१] और प्रशंसापत्र दिये जाते थे। सं० १६३१ में एक पेनीरीडिंग-क्लब सभा स्थापित कर उसमें काम करने लगे। उन्हें प्रायः यही धुन[२] लगी रहती कि किसी प्रकार जनतामें विद्या प्रचार हो।

इनकी जीवन-यात्रा की प्रायः सभी बातों की निचोड़ रसिकता है। इनके सभी कार्यों में यही प्रगट होती है। जहां एक ओर इनमें इतनी देश-ममता[३] तथा जातृप्रतिका विचार था, दूसरी ओर इन्हों ने अपने मन-बहलाव की सामग्री इकट्ठी करने में भी कोई कसर न छोड़ी थी। शतरंजमें यह बड़े निपुण थे। गाने बजाने में यह बड़े प्रवीण थे। कबूतर उड़ाने का इन्हें बड़ा व्यसन था। उदारता इनमें इतनी बड़ी चढ़ी थी कि कवियों तथा विद्वानों को हज़ारों रुपये खुले चित्त से दान देते थे। दीप-मालिका[४] के दिन इनके यहां इतर के दिये जलते थे।

---

१ पुरस्कार, पारितोषिक। २ धुन, लगन। ३ देश-ममता देश प्रेम। ४ दीप-मालिका, दिवाली।

सं० १९२७ में इन्हें सार-सुधानिधि पत्रिका में 'भारतेंदु' की पदवी वितरण करने का प्रस्ताव किया। यह पढ़ते ही समस्त पत्रों एवं मनुष्यों ने मुक्तकण्ठ से इसका अनुमोदन किया॥

कराल काल किसी को फूलते फलते नहीं देख सकता भारतेन्दु के अन्तिम दिन समीप आने लगे। सं० १९४० में यह क्षय रोग से ग्रस्त हो गये और १९४१ के जनवरी मास की एक रात्रि में भारत का इन्दु भारत को अन्धकारमय छोड़ अस्त हो गया।

इस महाकवि ने केवल ३० वर्ष इस संसार को सुशोभित किया। १८ वर्ष की अवस्था से पहले ही इन्हों ने काव्यरचना प्रारम्भ कर दी थी। पहले ये गद्य ही लिखते थे, परन्तु पीछे पद्य में इनकी प्रवृत्ति बहुत अधिक हो गई। महा नाटक लिखने में यह माने हुए विद्वानों में से थे। सत्यहरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस तथा धनंजयविजय आदि नाटकों का इन्हों ने बड़ी योग्यता से हिंदी में अनुवाद किया है। इतिहास ग्रन्थों में इनके रचे काश्मीर-कुसुम, महाराष्ट्र देश का इतिहास आदि अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रतिष्ठा पा रहे हैं। राज-भक्ति विषय पर भी इन्होंने विजयिनी, विजय-वैजयन्ती तथा युवराज एडवर्ड आदि अनेक ग्रन्थ रचे हैं। होली, प्रेम फुलवारी, प्रेमाश्रवर्षण आदि छोटे २ पद्य-काव्य कविता में बड़े उत्तम ग्रन्थ हैं।

ये महाशय अपने समय के अद्वितीय कवि थे। जो २ प्रसिद्ध घटनाएं इनके जीवन काल में हुई उन सब का इन्हों ने किसी न किसी सम्बन्ध में अपने ग्रन्थों में वर्णन कर दिया है।

तें, झुकाव।

रेशम और रेशम के कीड़े।

सभ्य जगत् में जितना उपयोग प्रतिदिन रेशम का हो रहा है, उतना और किसी वस्तु का नहीं। फिर भी बहुत कम लोग होंगे जिन्हें यह ज्ञात होगा कि रेशम कहां से और किस तरह उत्पन्न होता है। साधारणतः लोग यही समझते हैं कि रेशम की उत्पत्ति भी लगभग रुई-सूत्र के समान होती होगी। इसकी उत्पत्ति के विषय में लोगों के विचार किसी प्रकार के भी हों किंतु ऐसे पुरुष तो बहुत कम होंगे जिन्हें यह पूर्ण ज्ञान हो कि रेशम कीड़ों से उत्पन्न होता है।

संसार में और विशेषतः भारतवर्ष में ऐसे भी अनेक लोग हैं जिनके सामने किसी प्राणी को मारना तो दूर रहा कुछ दुःख देना भी घोर अधर्म है। यदि उस संप्रदाय[1] के लोगों को इसका पूरा पता लग जाय तो न जाने उनकी दृष्टि में यह वस्त्र जितने अब पवित्र समझे जाते हैं उससे कितने गुणा भ्रष्ट[2] माने जाएं। कई लोग तो यहांतक उतर आयें कि इन्हें सर्वथा अस्पृश्य[3] समझने लगें।

पट-कीट तितली जाति का एक विशेष कीट है जो कोष में रहता है। इसका पोषण तूत के पत्तों से होता है। पहले पहल यह कीट चीन देश में ही हुआ करता था। इसकी शारीर रचना अद्भुत सी है। इसके ऊपर मोटे २ बाल होते हैं और दोनों ओर श्वेत वर्ण के लंबे २ पंख होते हैं जिन पर काली धारियें होती हैं। इसकी टांगे होती तो छोटी हैं, परन्तु बहुत

---

१ सम्प्रदाय, धार्मिक मत (Sect)। २ भ्रष्ट, दूषित।
३ अस्पृश्य, अछूत।

सबल होती हैं। इसमें न्यो जाति की आकृति अत्यन्त भिन्न तथा बड़ी होती है। अण्डे देते ही उसकी मृत्यु हो जाती है। इसके अण्डे का आकार सरसों के दाने जितना होता है। उन की संख्या २५० से ४०० तक होती है।

तूत के पत्ते इनका भोजन है। इस लिये जिन लोगों का काम रेशम बनाना है उनको इनके लिये हरे पत्ते सदा तैयार रखने पड़ते हैं। अण्डे से जब कीट निकलता है, तो उसका रंग काला और परिमाण इंच की चौथाई से भी कम होता है परन्तु बाहर निकलते ही वह तूत के पत्ते खाकर जल्दी ब बढ़ने लगता है। कुछ देर के बाद उसकी ऊपर की खाल छोटी हो कर गिर जाती है और नीचे से नई निकल आती है। इस प्रकार वह पांच बार खलड़ी बदलता है। प्रथम अण्डे से निकलने के आठवें दिन और फिर हर एक पांचवेंदिन उसक खाल बदलती है।

अन्तिम बार खलड़ी उतरने के बाद दस दिन तक व बढ़ता रहता है और अपने पूरे आकार तक पहुंच जाता उस समय इसकी लंबाई दो इंच और रंग श्वेत हो जाता इसकी सोलह टांगें और शरीर के बाहर गोल टुकड़े होते और अन्तिम टुकड़े में से एक छोटा सा सींग सा नि आता है। अब यह पत्तों का खाना छोड़ देता है और ि हलकी चीज के साथ चिपट कर भीतर से पीत-वर्ण[1] निकालने लगता है। ज्यों २ इस पदार्थ को बाहर क लगती है त्यों २ उस के सुन्दर तन्तु बनने लगते इन तन्तुओं को वह कीड़ा अपने चारों ओर गेंद क

१ पीत-वर्ण, पीले रंग का।

पौण्ड होता है और बारह पौण्ड कोयों से एक पौण्ड रेशम निकलता है इसलिये एक पौण्ड रेशम बनाने के लिए ३००० कीड़े मारने पड़ते हैं। चर्खों से उतार कर रेशम के बण्डल बनाए जाते हैं जिसे कच्चा रेशम कहते हैं। फिर कई एक बण्डलों के गट्ठ बान्ध कर अन्य देशों में भेजे जाते हैं। वस्त्र बुनने से पहले इसे धो कर दो तीन तन्तु इकट्ठे किए जाते हैं, इस लिये कि कपड़ा बुनते समय तान्त टूट न जाय।

रेशम का कीड़ा ठंडे देशों में नहीं रह सकता। जगत् में रेशम उत्पन्न करने वाले मुख्य देश यह हैं—चीन, जापान, हिन्दुस्तान, ईरान, तुर्किस्तान, इटली, और दक्षिणी फ्रांस। अकेले चीन ही में इतना रेशम होता है जितना अन्य सब देशों में मिल कर भी नहीं होता। फ्रांस में सबसे अधिक रेशमी कपड़ा बनता है। भारतवर्ष में संसार भर के रेशम का केवल एक पचीसवां भाग उत्पन्न होता है।

यहां पर जङ्गली कीड़ों का रेशम सर्वत्र उत्तम होता है। इस प्रकार का रेशम आसाम प्रान्त में बहुत होता है। बनारस का टसर भी इसी रेशम का बना होता है।

संसार में रेशम का प्रचार जितना जल्दी हुआ है उसे देख कर विस्मय हुए बिना नहीं रहता। १८७१ सन् में इसका उपयोग यूरोप में बहुत थोड़ा था और वह भी बड़े भद्दे स्वरूप में। कोई भी इसे रंगना नहीं जानता था। किन्तु आजकल फ्रांस के एक ल्योजन (Lyons) नामक शहर में ही प्रति सप्ताह १४००० पौंड रेशम खप जाता है।

हिन्दुस्तान में इसका उपयोग चिरकाल से होता चला आया है। संस्कृत साहित्य में पुराने से पुराने ग्रन्थ में भी ५६ वस्त्रों के धारण किए जाने के प्रमाण मिलते हैं।

प्रो० विल्हल्म कॉनराड राञ्जन
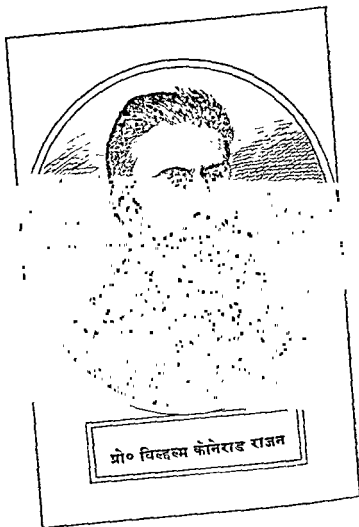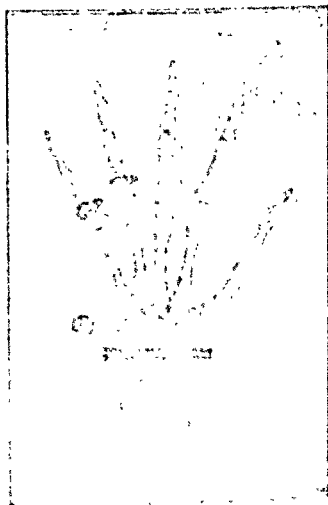
प्रो० रौंजन साहिब ऋण ध्रुवीय किरणों के सम्बन्ध में खोज कर रहे थे उसी कमरे में मेज़ के सामने परदा लटका हुआ था। जब किरण उत्पन्न हुई तो झट यह परदा भी चमकने लगा। रौंजन साहिब की दृष्टि उधर आकर्षित हो गई। यह समझ कि यह प्रकाश ऋणध्रुवीय किरणों के कारण ही हुआ है, उन्हों ने कुप्पी को ढक दिया। ऐसा करने पर भी यह परदा पूर्ववत् चमकता रहा, यद्यपि ऋण ध्रुवीय किरण रुक गई थी। यह देख वे बड़े विस्मित[1] हुए और इसकी परीक्षा की प्रबल इच्छा उन के मन में उत्पन्न हुई। उन्हों ने परदे तथा प्रकाश के बीच कई पदार्थ रखे तो भी प्रकाश न रुक सका और परदा वैसे ही चमकता रहा और नहीं उस परदे पर उन पदार्थों का प्रतिबिम्ब[2] पड़ा। उन्होंने फिर जब अपना हाथ बीच रक्खा तो हाथ की हड्डियों का प्रतिबिम्ब परदे पर पड़ने लगा।

इन घटनाओं को देख कर प्रो० रौंजन ने इन किरणों के विषय में यह बात निकाली कि ऋण-ध्रुवीय किरण में एक और किरण भी है। जब ऋण-ध्रुवीय किरण किसी पदार्थ से टकराती है तो यह किरण उत्पन्न हो जाती है और ऋण-ध्रुवीय किरण के रोक लेने पर भी उस पदार्थ से पार होकर निकल जाती है। परन्तु बहुत से ऐसे पदार्थ हैं जिन से यह किरण पार नहीं हो सकती और इसी कारण इन किरणों के सामने हाथ रखने से यह किरण पार होगई, परन्तु हड्डियों का प्रतिबिम्ब परदे पर पड़ने लगा।

---

१ विस्मित, हैरान। २ प्रतिबिम्ब, अक्स।

प्रो० रौंजन ने इस किरण का पूरा तत्त्व[1] जानने के लिए बहुत प्रयास किया परन्तु कुछ समझ में न आया। इस लिए इस किरण का नाम रखना उसके लिए कठिन हो गया। विवश हो उसने इसका नाम एक्स किरण (X-rays) रख दिया क्यों कि गणित विभाग में 'X' उसके स्थान में रखा जाता है जिस के विषय में कुछ पता न हो।

इन किरणों में और सूर्य की किरणों में बहुत अंशों में समता होने पर भी एक बड़ा भारी भेद यह है कि सूर्य की किरण के आगे यदि कोई प्रतिबंधक[2] पदार्थ रख दिया जाय तो वह वहीं रुक जाती है, परन्तु एक्स किरण बहुत से पदार्थों में से पार हो जाती है। लकड़ी, कागज़, कपड़ा, मांस आदि इसकी गति को नहीं रोक सकते परन्तु हड्डी तथा अन्य बहुत से ठोस पदार्थों में से यह पार नहीं हो सकती।

जब से इन किरणों का आविष्कार हुआ है तभी से रसायन विद्या (Medical science) में बड़ा भारी परिवर्तनसा हो गया है। जिन शरीर के भीतर के व्रणों को पहले असाध्य[3] या दुःसाध्य[4] समझा जाता था वे अब सुसाध्य होगए हैं। जब कभी शरीर के किसी अंग में कुछ पीड़ा का अनुभव होता है तो उसी समय एक्स किरण लगा कर देख लिया जाता है कि वहां पर कोई व्रण तो नहीं। जब एक बार रोग का ज्ञान हो जाय तो औषध-प्रयोग में फिर कुछ कठिनता नहीं रहती।

---

१ तत्त्व, भेद। २ प्रतिबंधक, रोकनेवाला। ३ असाध्य, जिसकी चिकित्सा नहीं हो सकती। ४ दुःसाध्य, जिसकी चिकित्सा कठिन हो।

आजकल हजारों ही नहीं लाखों आदमियों के प्राण इसी की कृपा से बच रहे हैं।

संसार में कोई पदार्थ निर्दोष नहीं होता। जीवित मनुष्य के शरीर पर यदि एक्स किरणें बार बार डाली जाएं तो उस अंग को नष्ट कर देती हैं। इसी कारण इनके प्रयोग से हज़ारों पुरुष कई अंग खो भी बैठे हैं। बहुत से वैज्ञानिक इस दोष के दूर करने के यत्न में हैं और उन्हें बहुत सी सफलता भी प्राप्त हो चुकी है।

देहरादून में इस किरण द्वारा चिकित्सा[1] करने का बड़ा अच्छा प्रबंध है। जब लार्ड हार्डिंग पर देहली में बम्ब फेंका गया था, तो एक्स किरण के प्रयोग से कुछ बम्ब के टुकड़े उनके शरीर में से निकाले गए थे।

इसी किरण की सहायता से हड्डी, पसली या व्रण का छाया चित्र (photo) लेकर उसकी चिकित्सा की जाती है। फोटो के कैमरे के सामने उस अंग को रखकर दूसरी ओर से एक्स किरण उसपर छोड़ी जाती है। तब सभी हड्डियाँ या फोड़ आदि का प्रतिबिम्ब कैमरे के शीशे पर पड़ जाता है।

लड़ाई में गोलों या बारूद के टुकड़ों की मार से जब कभी योधा का मुख छिन्न भिन्न और विरूप हो जाता है तो वह एक्स किरण के प्रयोग से पंद्रह बीस दिन में ही पूर्ववत् दिखाई देने लगता है। यूरोप के महायुद्ध में इस प्रकार सहस्रों पुरुषों की चिकित्सा[1] की गई।

---

१ चिकित्सा, रोग के नाश का उपाय।

रत्न परीक्षा में भी इसका उपयोग होता है। यदि हीरा एक्स किरण के प्रकाश में रक्खा जाए और उसकी छाया किसी वस्तु पर गिरे तो जानना चाहिये कि वह शुद्ध है, अन्यथा अशुद्ध। एक दिन किसी के यहां एक पाहुना[1] आया। अवसर पा उसने अपने मित्र की नाकी चुरा कर जेब में डाल ली। किसी कारण गृह पति को संशय हो गया। उसने अपने पाहुने को प्रयोग-शाला[2] में ले जाकर जब उसे एक्स किरण के सामने खड़ा किया तो वह फुन्नी उस के जेब में पड़ी हुई दिखाई दे गई।

मिस्र में एक चोर ने किसी की घड़ी की जंजीर चुरा ली। उसे जब पकड़ कर थाने में ले जा रहे थे, तो मार्ग में वह जंजीर को मुख में डाल निगल गया। तब यह सिद्ध करना कठिन हो गया कि जंजीर उसके पास है। उसको भी एक्स किरण के सामने खड़ा कर देखा गया तो जंजीर उस के उदर में पड़ी दिखाई दी। किसी प्रकार चीड़ फाड़ कर वह उस के उदर से निकाली गई और उसे कारागार में भेजा गया।

अभी तो इस किरण को आविष्कृत हुए थोड़े ही समय हुआ है। जितना अधिक समय बीतता जाएगा उतना ही इस के दोष दूर होकर उपयोग बढ़ता जाएगा। एक दिन अवश्य ऐसा आएगा कि संसार में कोई भी ऐसा रोग न रहेगा जिसका पूर्ण निदान इस एक्स किरण द्वारा न

---

१ पाहुना, अतिथि। २ प्रयोग-शाला, जहां पर प्रयोग (Experiment) द्वारा सिद्धांतों की खोज की जाती है Laboratory

सके। आज यह सम्भव हुआ है कि मनुष्य के शरीर
भीतर की वस्तुओं का परिचय हो जाता है तो कुछ
समय के बाद यह भी सम्भव हो जाएगा कि पृथिवी के
र में तथा जल के उदर में जितने भी पदार्थ हैं, उन का
न इसी किरण के द्वारा या इसी समान किसी अन्य किरण
ग हो सके॥

महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य ।

ऐतिहासिक[1] सम्राटों में महाराजा चन्द्र गुप्त का नाम सब से प्रथम है। यह मगध देश के राजा नन्द के बेटे थे। इनकी माँ मुरा नाम की शूद्री थी। इस कारण हिन्दू धार्मिक प्रथा के अनुकूल यह अपनी माता की ही जाति के माने जाते थे। इस सामाजिक निन्दा से उनका हृदय सदा दुःखित रहता था। एक समय अवसर पा कर मगध देश छोड़ कर पंजाब में जा पहुंचे। उन दिनों सिकंदर ने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की हुई थी। चन्द्रगुप्त ने ऐसे अवसर को हाथ से न जाने दिया और सिकन्दर के पास जाकर उसकी सेना में भर्ती हो गए। यहां उन्हें पूरी युद्धकला[2] सीखने का अवसर मिल गया। ईसामसीह के ३२३ वर्ष पूर्व जब सिकंदर की मृत्यु हुई तब उसके विस्तृत[3] राज्य को बांटने के लिए उस के सेनापतियों में महायुद्ध होने लगा। सभी को अपनी २ पड़ गई और सारी राज्य-व्यवस्था शिथिल[4] हो गई। चन्द्रगुप्त ऐसे अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। झट कुछ सेना इधर उधर से एकत्रित कर के उन्होंने पंजाब पर अपना स्वत्व[5] जमा लिया। इसके बाद उसने मगध देश पर चढ़ाई कर नन्द वंशीय राजा को पदच्युत[6] कर दिया और स्वयं ईसामसीह

: ऐतिहासिक, इतिहास में आये हुए (Histori
, लड़ाई का हुनर। ३ विस्तृत, विशाल। ४ शि
., कब्जा, अधिकार। ६ पदच्युत कर दिया,
., दिया।

से ३२८ वर्ष पहले सिंहासन पर बैठ गये।

सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसके एक सेनापति सेल्यूकस नेकटर ने भारतवर्ष के पश्चिमी प्रदेशों में एक दृढ़ राज्य स्थापित कर लिया। यह राज्य सिरिया नाम से प्रसिद्ध है। बेबीलोन उस राज्य की राजधानी बनाई गई। उसे अब सिकन्दर के जीते हुए राज्य को अपने हस्तगत करने की लालसा हुई अतः उसने बहुत दलबल सहित भारतवर्ष पर चढ़ाई की। पहले पहल ही इसकी टक्कर[1] चन्द्रगुप्त से हुई, और जितनी बार इसका चन्द्रगुप्त से सामना हुआ उतनी बार ही इसे पीठ[2] दिखाना पड़ा। अन्त में उसे महाराज चन्द्रगुप्त के साथ सन्धि करनी पड़ी।

चन्द्रगुप्त ने इसे पांचसौ हाथी दिये और उन के बदले बलोचिस्तान अफगानिस्तान और सीमान्त प्रदेश पर अपना स्वत्व कर लिया। इसके अतिरिक्त सेल्यूसकने अपनी लड़की का विवाह चन्द्रगुप्त से कर दिया और मेगस्थनीज़ नामक एक दूत को चन्द्रगुप्त के दरबार में रहने को भेजा। यह बहुत समय तक वहां रहा। इस ने तत्कालिक परिस्थिति के विषय में एक पुस्तक भी लिखी जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व की है। सिवाय इस पुस्तक के हमारे पास चन्द्रगुप्त के शासन-काल का अन्य कोई विश्वासजनक[3] इतिहास ग्रन्थ नहीं है।

---

१. टक्कर, सामना। २ पीठ दिखानी पड़ी, हार मानी
३ विश्वास- जनक, विश्वास दिलाने वाला।

चन्द्रगुप्त की सेना के चार भाग थे हाथी, रथ, सवार और पैदल। उन में से हाथी ६००० और उन के सवार ३६०००, घुड़सवार ३००००, पैदल ६००००० और रथ २००० थे।

सेना का प्रबन्ध छः पञ्चायतों के अधिकार में था। चार पंचायतों के अधिकार में सेना के उपयुक्त[1] चार अङ्ग थे। पांचवीं का काम युद्ध के समय सामग्री इकट्ठा करना था। छठी जल सेना का प्रबन्ध करती थी।

राजधानी पाटलीपुत्र के शासन का प्रबन्ध भी बहुत अच्छा था। युद्ध विभाग की तरह नागरिक प्रबन्ध के लिए भी तीस राजपुरुष नियुक्त और पांच पांच सभ्यों की पृथक २ छः पञ्चायतें थीं। हर एक पञ्चायत को अलग अलग काम दिया हुआ था।

पहली सभा का काम देशी कारीगरी की देख भाल करना था। यदि कोई वस्तु बनवानी होती तो यह इस सभा का कार्य था कि कारीगरों की मज़दूरी ठहराए।

दूसरी सभा के ऊपर विदेशियों के आचार तथा चेष्टाओं[2] की देख भाल का भार था। इस के सभासद नवागत[3] विदेशियों पर दृष्टि रखते और उन के निवास स्थान आदि का प्रबन्ध करते।

तीसरी सभा के द्वारा शहर के मनुष्यों के जन्म मरण का ब्योरा रक्खा जाता था। वाणिज्य व्यवसाय का प्रबन्ध चौथी सभा के हाथ में था। इस के सभासद क्रय विक्रय की

---

१ उपर्युक्त, ऊपर कहे हुए। २ चेष्टा, हरकत। ३ नवागत, नये आए हुए।

चन्द्रगुप्त की सेना के चार भाग थे हाथी, रथ, सवार और पैदल। उन में से हाथी ६००० और उन के सवार ३६०००, घुड़सवार ३००००, पैदल ६००००० और रथ २००० थे।

सेना का प्रबन्ध छः पञ्चायतों के अधिकार में था। चार पंचायतों के अधिकार में सेना के उपयुक्त¹ चार अङ्ग थे। पांचवीं का काम युद्ध के समय सामग्री इकट्ठा करना था। छठी जल सेना का प्रबन्ध करती थी।

राजधानी पाटलीपुत्र के शासन का प्रबन्ध भी बहुत अच्छा था। युद्ध विभाग की तरह नागरिक प्रबन्ध के लिए भी तीस राजपुरुष नियुक्त और पांच पांच सभ्यों की पृथक् २ छः पञ्चायतें थीं। हर एक पञ्चायत को अलग अलग काम दिया हुआ था।

पहली सभा का काम देशी कारीगरी की देख भाल करना था। यदि कोई वस्तु बनवानी होती तो यह इस सभा का कार्य था कि कारीगरों की मज़दूरी ठहराए।

दूसरी सभा के ऊपर विदेशियों के आचार तथा चेष्टाओं² की देख भाल का भार था। इस के सभासद नवागत³ विदेशियों पर दृष्टि रखते और उन के निवास स्थान आदि का प्रबन्ध करते।

तीसरी सभा के द्वारा शहर के मनुष्यों के जन्म-मरण का ब्योरा रक्खा जाता था। वाणिज्य व्यवसाय का प्रबन्ध चौथी सभा के हाथ में था। इस के सभासद क्रय-विक्रय की

---

१ उपर्युक्त, ऊपर कहे हुए। २ चेष्टा, हरकत। ३ नवागत, नये आए हुए।

व्यवस्था को ठीक रखते थे और तोल और माप में
रखते थे। पांचवीं सभा के अधिकार में देशीय शि
उन्नति करना था। माल बिकने पर कर लेने का का
सभा के अधिकार में था। द्रव्य-विभाग की व्यवस्था इस
थी कि खेत में उत्पन्न होने वाली वस्तु का चतुर्थांश
में राजा को देना पड़ता था। कृषि के उपकारार्थ
निकालने वाला विभाग अलग ही था।

चन्द्रगुप्त का राज्य कई प्रांतों में बँटा हुआ था। हर
एक २ राज-प्रतिनिधि रहता था। प्रत्येक नगर में कुछ
भी रक्खे हुए थे कि जिनका यह कर्तव्य था कि इधर
घूम नगर की व्यवस्था को देख भालकर उसका यथावत्
ना राजा के कानों तक गुप्त रीति से पहुंचा दें।

भारतवासी उस समय सत्यता तथा न्यायप्रियता के
वित्र प्रसिद्ध थे। इस का कारण यह भी था कि छोटे २
धों के लिए भयानक दण्ड दिये जाते थे।

चन्द्रगुप्त ने चौबीस वर्ष तक राज्य किया। ई० स
२९ वर्ष पहले कोई पचास वर्ष की अवस्था में इनका दे
गया। इनके बाद इनके वंश का नाम मौर्य्य पड़
योंकि इनकी माता का नाम मुरा था।

सम्राट् चन्द्रगुप्त का जीवन बहुत अंशों में एक अ
ीवन है। दासी पुत्र होकर अखिल भारत-वर्ष का स
न जाना इनके ही साहस का काम था।

समता, बराबरी।

ब्रिटिश पार्लिमेण्ट ।

ब्रिटिश पार्लिमेण्ट उस संस्था का नाम है जिसके अधीन लैण्ड, स्काटलैण्ड, और आयर्लैण्ड का राज्य-तन्त्र[1] चलता । हिन्दुस्तान आदि अन्यान्य देश जो ब्रिटिश राज्य के धीन हैं उनका शासन भी इसी संस्था द्वारा होता है । यही हीं किन्तु समस्त संसार की प्रजा सत्तात्मक (Democratic) शासन का सच्चा मार्ग भी यही बतलाती है । जहां कहीं प्रजा सत्ता[2] के अनुसार राज्य की कार्यवाही होती है वहां पर ब्रिटिश पार्लिमेण्ट का ही अनुकरण किया गया है । इस लिये ब्रिटिश पार्लिमेण्ट को पार्लिमण्टों की जननी (The Mother of Parliaments) कहते हैं । इसका अनुकरण करने पर भी और कहीं भी प्रजाशासन इतनी योग्यता और प्रजा के मतानुसार नहीं होता जैसा यहां पर होता है । राजा और प्रजा, धनी और निर्धन, व्यापारी और श्रमजीवी आदि सभी इस के आवश्यक तथा परस्पराश्रित[3] अंग हैं । कोई अंग स्वतन्त्र रह कर काम नहीं कर सकता ।

इसके वर्तमान रूप में परिणत[4] होने से पूर्व इङ्गलैण्ड में भी प्रजा शासन केवल राजाओं की इच्छा पर निर्भर था । स्वेच्छाचारी राजा के अधीन प्रजा को दुःसह कष्ट झेलने पड़ते थे, परन्तु जब से इस संस्था का संगठन हुआ है तभी से

[1] राज्यतन्त्र, राज्य का कारोबार । [2] प्रजासत्ता, प्रजा का अधिकार । [3] परस्पराश्रित, एक दूसरे के अधीन । [4] परिणत होना, बनना ।

ब्रिटिश पार्लियामेण्ट का दृश्य एक ओर से।
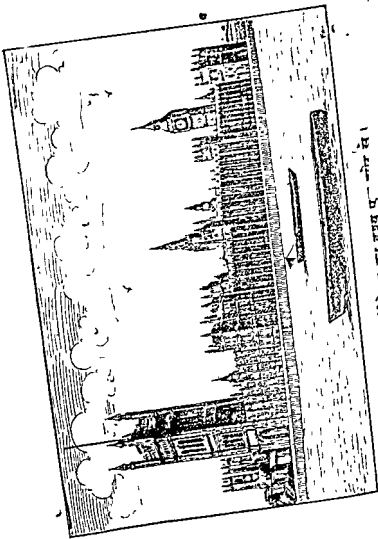
ब्रिटिश पार्लिमेण्ट का दृश्य प— ओर से।

प्रतिनिधि होते हैं परन्तु यदि शिष्ट-स
यह सिद्ध कर दे कि जन-सभा की मति लोगों की मति
विरुद्ध है, तो राजा मन्त्रियों के कहने से नवीन जन-सभा
सङ्गठन की आज्ञा दे सकता है जिससे लोगों की यथार्थ मा
का ज्ञान होजाय। यदि शिष्ट-सभा इस नयी जन-सभा के
प्रस्ताव को स्वीकार न करे तो मन्त्री राजा को नयी शि
सभा के निर्वाचन करने की सम्मति देता है। जन-सभा
सभासदों को लोग चुनते हैं और शिष्ट-सभा के सभासदों
राजा मन्त्रियों की सम्मति से चुनता है। इस प्रकार शिष्ट-स
के ऊपर मन्त्रिमण्डल द्वारा जन सभा का और जन सभा-
के द्वारा लोक-मत का अंकुश[1] रहता है। शिष्ट सभा को य
भय रहता है कि यदि हमने जनसभा का विरोध किया त
कहीं ऐसा न हो कि हमारे स्थान में नया निर्वाचन हो जा
इस लिये वे जन-सभा का विरोध प्रायः नहीं करते। स
१९०६ में शिष्ट सभा ने जन सभा के धन-सम्बन्धी प्रस्ता
(Finance Bill) को अस्वीकृत किया था। इस पर मह
आन्दोलन[2] के पश्चात् पार्लिमेण्ट में निम्नलिखित प्रस्ताव १९१
में पास हो गया।

(१) धन सम्बन्धी प्रस्ताव जब जन-सभा की ओर
शिष्ट-सभा में भेजे जायँ, तो शिष्ट-सभा को उन्हें एक मास
अन्दर ही स्वीकार करना पड़ेगा, अन्यथा उस सभा की रा
के बिना ही वह राजा की स्वीकृति के लिए उपस्थित कि
जायँगे।

---

१ अंकुश, हाथियों को वश में रख कर चलाने का एक शस्
प्रति बन्धक। २ आन्दोलन, हल चल।

(२) जिन प्रस्तावों को जन-सभा तीन बार स्वीकार कर है वे राजा की स्वीकृति के लिए उपस्थित किये जा सकते यद्यपि शिष्ट-सभा उनका पहले से ही विरोध करती ती हो ।

(३) पार्लिमेंण्ट की अवधि तीन वर्ष होगी । तीन वर्ष के द नया निर्वाचन होगा ॥

यद्यपि यह नियम शिष्ट सभा के विरुद्ध थे तो भी उसे नने ही पड़े, क्योंकि उन्हें भय था कि यदि हम इन्हें स्वीकार करेंगे तो राजा मन्त्रियों की सम्मति से शिष्ट सभा के नवीन दस्य चुन कर इन नियमों को स्वीकृत करा लेगा।

जो प्रस्ताव अधिक सदस्यों की सम्मति के अनुकूल होते यही इन दोनों सभाओं में स्वीकृत होते हैं । शिष्ट—सभा सभापति को लार्ड चान्सलर (Lord Chancelor) र जन-सभा के सभापति को स्पीकर (Speaker) कहते । स्पीकर का चुनाव पार्लिमेंण्ट करती है । यह आवश्यक कि स्पीकर पक्ष विशेष[1] का अनुगामी न हो । सभा के र्य को निर्धारित नियमों पर चलाना ही उस का कर्तव्य है। ीकर के अधीन एक अधिकारी रहता है जिसे सर्जेण्ट एट् र्मस (Sergeant-at-Arms) कहते हैं। यदि कोई सभासद गड़[2] हो कर अनुचित व्यवहार करे तो स्पीकर उसे इस धिकारी की सहायता से पार्लिमेंण्ट से बाहिर निकाल लता है ।

ब्रिटिश पार्लिमेंण्ट की शासन-प्रणाली की सफलता के दो ान कारण हैं ।

---

१ पक्ष-विशेष का, किसी खास पक्ष का । २ उद्दण्ड, उजड्ड ।

चले उधर चलना पड़ता है। यदि वह ऐसा न करे तो उसे यह पद त्यागना पड़ता है। शासक पक्ष के विरुद्धपक्ष उस का प्रतिरोध करते रहते हैं। जब विरुद्ध पक्ष के समर्थकों की संख्या बढ़ जाय तो शासक पक्ष को राज्य-तन्त्र छोड़ना पड़ता है। फिर पार्लिमेण्ट का नया निर्वाचन होता है। श्रमजीवी पक्ष को अभी १९२४ में इङ्गलैण्ड की राज्यप्रणाली चलाने का अवसर मिला है, और इन की संख्या पहले से दिन दुगुनी और रात चौगुनी बढ़ रही है। सब पुरुषों का यही विचार है कि अब श्रमजीवी-पक्ष का भाग्योदय होने वाला है। पिछले महायुद्ध में इङ्गलैण्ड के लोगों ने पक्ष विपक्षियों के वाद-विवाद को छोड़कर केवल शत्रुविजय को ही अपना उद्देश्य बना लिया था। इसलिये जो उस समय पार्लिमेण्ट बनी थी उसमें किसी पक्ष का भी विशेष प्रभाव न था। शिष्ट-सभा में केवल दो पक्ष हैं इस में श्रमजीवी पक्ष नहीं। संरक्षक पक्ष वालों की इस में अधिकता है।

२—मन्त्रिमण्डल—मन्त्रि मण्डल का बनाना प्रधान मन्त्री (जिसको राजा नियुक्त करता है) का काम है। अपने पक्ष के मुख्य मनुष्यों में से जो काम में अनुभवी तथा योग्य होता है, वह उसे उस विभाग का मन्त्री बना देता है। यदि वह चाहे तो शिष्ट-सभा के सभासदों को भी मन्त्रि-पद दे सकता है। मन्त्रि-मण्डल (Cabinet) म बहुमत से कार्य नहीं होता, प्रत्येक मन्त्री अपने २ विभाग का कार्य करता है। यदि कोई विषय अत्यावश्यक तथा विवादास्पद[1] हो तो प्रधान मन्त्री उसे समग्र मण्डल के सामने निर्धारणार्थ[2] उपस्थित करता है। जो मन्त्री दूसरों से सहमत नहीं होता,

---

१ विवादास्पद, झगड़े का। २ निर्धारणार्थ, निश्चय के।

अपना पद त्याग करना पड़ता है । मन्त्रियों के सहायतार्थ उपमन्त्री (Under Secretary) होते हैं । वह पार्लिमेण्ट के मेम्बर नहीं होते । इस कारण पार्लिमेण्ट बदल जाने पर उन्हें अपना पद त्याग नहीं करना पड़ता । इस लिए कार्यवाही में कोई क्षति नहीं होती । कहने को तो राजा ही राज्य का प्रभु है किन्तु वह प्रधान मन्त्री की सहायता के बिना कोई काम नहीं करता । जो काम राजा के नाम से होते हैं वास्तव में राजा उनका उत्तरदायी नहीं होता । इसलिए यह कहावत प्रसिद्ध है कि राजा कोई अनुचित काम नहीं करता (The King can do no wrong) ।

जन-सभा के सभासदों की संख्या इस समय सैकड़ों की है । जिसमें इङ्गलेण्ड, वेल्स, स्काटलैण्ड और आयरलैण्ड के प्रतिनिधि हैं । पार्लिमेण्ट की बैठक वेस्ट मिनिस्टर एबी में होती है । सभा-गृह में सारे सभासद कठिनता से बैठ सकते हैं । यदि वह पूर्ण संख्या में उपस्थित हों तो कुछ खड़े रहते हैं । और कुछ इधर उधर फिर कर या पुस्तकालय में बैठ क समय बिता देते हैं । जब सम्मति (Vote) देने का समय आता है तो एक घण्टी बजती है और सभी आकर अपने २ पक्ष के समर्थन[1] में एक वोट दे देते हैं । आवश्यक अवसरों पर जब पूरे वोटों की आवश्यकता होती है तो प्रोत्साहक (Whips) अपने २ पक्ष के सभासदों को एकत्रित कर लेते हैं । यदि वोटों की संख्य गिनने में स्पीकर के निर्णय में संशय हो तो प्रत्येक पक्ष लोग एक २ कमरे में चले जाते हैं वहीं पर उनकी गिनती ती है ।

१ समर्थन, पुष्टि Support ।

पार्लिमेण्ट का समय सायंकाल के ४ बजे से रात के ११ बजे तक होता है।

शिष्ट-सभा के सभासदों की संख्या नियत नहीं। प्रतिवर्ष कुछ नए सभासद चुने जाते हैं इस लिए इनकी संख्या बढ़ती रहती है। इङ्गलैण्ड के शिष्ट लोग (Nobles) वंश परम्परा से इस सभा के सभासद बन जाते हैं। स्काटलैण्ड के प्रति-वर्ष बदलते रहते हैं और आयरलैण्ड के जो शिष्ट प्रतिनिधि एकबार सभासद बन जायं वे फिर नहीं बदलते। सन् १९१९ में भारतवर्ष निवासी माननीय एस. पी. सिन्हा भी शिष्ट-सभासद बनाए गए थे।

पार्लिमेण्ट के निर्वाचित होने के बाद उसका कार्य आरम्भ इस प्रकार होता है। नए चुनाव के बाद राजा और रानी कुछ शिष्ट महिलाओं के साथ सभा-भवन में आ बैठते हैं। फिर शिष्ट-सभा की ओर से श्यामदण्डधारी (Keeper of the black rod) नामक एक अधिकारी राजा का सन्देश ले जन-सभा के सदस्यों को बुलाने आता है। सभी सभासद स्पीकर के पीछे २ आकर राजा के सम्मुख नम्र भाव से खड़े होजाते हैं। राजा उन्हें राज-काज का सन्देश सुनाते हैं। उसका उत्तर देने के लिए विचार करने को यह सभासद फिर सभा भवन में लौट आते हैं। प्रत्येक पक्ष उत्तर में अपने २ अभिप्राय प्रकट करने का प्रयत्न करता है यहीं से पार्लिमेण्ट की कार्रवाई आरम्भ होती है।

सावित्रि-सत्यवान् ।

प्राचीनकाल में मद्रदेश में अश्वपति नाम का एक राजा राज्य करते थे। वे बड़े धार्मिक तथा नीति-निपुण थे। इनके आधिपत्य[1] में मद्रदेश-निवासी बड़े आनन्द में थे और किसी को कोई कष्ट न था। परन्तु ईश्वरीय सृष्टि में केवल आनन्द और सुख किसी के भाग्य में नहीं। फूल के साथ कांटा भी होता है। जहां अश्वपति को सभी सांसारिक सुख-सम्पत्ति प्राप्त थी वहां उनके भोगने वाला कोई उत्तराधिकारी न था। इस लिए राजा प्रजा सभी शोकग्रस्त रहते थे। अन्त में राजा ने निराश होकर एक महासभा की, जिस में देश भर के विद्वान्, ऋषि, मुनिगण बुलाये गये।

सब के उपस्थित होने पर राजा ने कहा 'सज्जन-गण ! मैं वृद्धावस्था तक पहुंच गया हूं किन्तु अभी तक सन्तान के उत्पन्न होने के कोई लक्षण नहीं दीखते। मनुष्य को ईश्वरेच्छा के आगे शिर झुकाना पड़ता है। अब मैंने आपको इस लिए कष्ट दिया है कि आप जैसे विद्वान् तथा नीति-निपुण सुजनों से परामर्श[2] कर भविष्य में राज्य-शासन का कोई प्रबन्ध किया जाय"। महाराज के इन शब्दों से सभा में सन्नाटा[3] छा गया। सभी के नेत्रों में आंसू भर आये। किन्तु विषय इतना आवश्यक था कि उसका निर्णय अवश्य होना चाहिये था। कुछ तर्क-वितर्क[4] के बाद निश्चय हुआ कि आशा अभी छोड़ नहीं

---

१ आधिपत्य, स्वामित्व। २ परामर्श, विचार। ३ सन्नाटा खामोशी। ४ तर्क-वितर्क सोच विचार, ऊहापोह।

बैठना चाहिये। अन्त में यह निर्णय हुआ कि महाराज अश्वपति तपस्या द्वारा ईश्वर को सन्तुष्ट करें। राजा ने सभा के इस निर्णय पर सहर्ष अनुष्ठान करना स्वीकार किया और वन में जाकर कठिन तप करना आरम्भ कर दिया। कुछ समय व्यतीत होने पर ईश्वर की दया से उनके यहां एक कन्या उत्पन्न हुई। यह सुन प्रजा के आनन्द की सीमा न रही। राजा ने विधिपूर्वक जात-कर्म संस्कार करने के बाद उसका नाम सावित्री रक्खा। कन्या के लक्षण विलक्षण थे। क्या सौन्दर्य में, क्या बुद्धिमत्ता में, क्या कार्य दक्षता में, वह अनुपम थी। बाल्यावस्था में ही उसने इतना कुछ लिख पढ़ लिया जितना उसकी आयु के पुरुष भी नहीं कर सकते।

सुख में समय व्यतीत होते देर नहीं लगती। अब राजकन्या की आयु के तेरह चौदह वर्ष बीत गये थे। वह विवाह योग्य हो गई थी। महाराज अश्वपति को उसके लिये चिन्ता होने लगी। जगह जगह ब्राह्मण भेज दिये। किन्तु सावित्री के पाणि-ग्रहण-योग्य कोई वर न मिला। इस से राजा और भी खिन्न हुआ। अन्त में हताश[1] होकर राजा ने स्वयंवर करने का विचार किया, किन्तु यह प्रयास भी व्यर्थ गया। इधर सावित्री की आयु पंद्रह वर्ष की हो चुकी थी। राजा को इधर उधर की कुछ न सूझती थी। अब करता तो क्या करता? लाचार होकर सावित्री से कहने लगा "पुत्री! तू विवाह योग्य हो चुकी है, किन्तु अभी तक किसी ने तेरे पाणिग्रहण की इच्छा नहीं प्रकट की। इस लिए अब केवल एक ही

---

१ हताश, निराश।

उपाय रह गया है। वह यह है कि तू स्वयं देश देशान्तरों में भ्रमण कर अपने योग्य वर ढूंढ़ ले।"

सावित्री ने पिता के आदेश को मान लिया। इस लिए नहीं कि वह विवाह के लिए कोई उत्सुक[1] थी, किन्तु इस लिए कि एक तो उन दिनों स्त्रियों का इस प्रकार वरान्वेषण[2] बुरा न समझा जाता था, दूसरे ऐसा करने से पिता की चिन्ता भी दूर होती थी। उसने कुछ मन्त्री तथा नौकर साथ लिये और तीर्थ-भ्रमण आरम्भ कर दिया। दिन भर वह भ्रमण करती और रात्रि जहां आजाती उसी आश्रम में टिक रहती। इस प्रकार अनेक देशों तथा तीर्थ-स्थानों में भ्रमण करती हुई सावित्री का रथ एक दिन किसी बड़े रम्य तपोवन के निकट जा पहुंचा। वह आश्रम अन्ध मुनि का था। सन्ध्या समय हो गया था, इस लिए रात्रि के लिए वहां ही विश्राम करना पड़ा। अन्धमुनि तथा उसकी स्त्री दोनों अंधे थे, इस लिए सावित्री के आतिथ्य का काम उसके पुत्र सत्यवान् को ही करना पड़ा। उस समय सत्यवान् की आयु लगभग बीस वर्ष की थी। उसके मुख पर अपूर्व तेजस्विता झलक रही थी। चौड़े ललाट, दीर्घबाहु, विस्तृत वक्षःस्थल[3] से यह ज्ञात होता था कि यह किसी राजर्षि का पुत्र रत्न है। उसने सावित्री का स्वागत किया। सावित्री ने पूछा तो विदित हुआ कि वह शाल्वदेश के राजा द्युमत्सेन का पुत्र है। राजा द्युमत्सेन राज्य-भ्रष्ट तथा अन्धा हो कर उसी तपोवन में

---

१ उत्सुक, अत्यन्त इच्छुक। २ वरान्वेषण, वरकी खोज ३ वक्षःस्थल, छाती।

तप कर रहा है। सावित्री ने वह रात्री वहीं व्यतीत की। दूसरे दिन प्रातः काल अपने सेवकों को आज्ञा दी कि रथ को घर लौटा ले चलो।

जब सावित्री तीर्थ यात्रा समाप्त कर अपने पिता के पास राज-सभा में पहुंची, तो वहां नारद जी पहले ही उपस्थित थे। उस समय सावित्री की मुख-कान्ति से स्पष्ट दीख पड़ता था कि उसने अपना अभीष्ट[1] सिद्ध कर लिया है। पिता के प्रश्न करने पर सावित्री ने द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की। यह सुन महाराज अश्वपति के आनंद का कोई ठिकाना न रहा। सत्यवान् निर्धन होने पर भी उच्च कुलीन राज-पुत्र था। जब अश्वपति ने नारदजी की सम्मति पूछी तो उन्हों ने उत्तर दिया "सत्यवान् यद्यपि सदाचारी, पूर्ण जितेन्द्रिय, अखिल-विद्या-निष्णात[2] अतिसुन्दर धीमान यश का युवक है, परन्तु न्यूनता उसमें इतनी बड़ी है कि जिस के आगे यह संपूर्ण गुणगण व्यर्थ सा हो जाता है। वह यह है कि सत्यवान् की आयु अब केवल एक वर्ष बाकी रह गई है।" नारद जी के मुख से यह शब्द सुनते ही अश्वपति की मुख छवि उड़गई और वह शोक-सागर में डूब गया। कुछ देर चुप रह कर उस ने सावित्री से कहा, "पुत्री! हमारे भाग्य में सुख-भोग नहीं लिखा है। किन्तु परमात्मा का धन्यवाद करना चाहिए कि इस दोष का हमें पहले पता लग

---

१ अभीष्ट, अभिलषित। २ अखिल-विद्या-निष्णात, सब विद्याओं को भली भाँति जानने वाला।

गया। अब जान बूझ कर एक अल्पायु युवक के साथ तेरा विवाह नहीं करूंगा। अब फिर तुझे भ्रमण कर किसी दूसरे वर की खोज करनी पड़ेगी"।

सावित्री का उत्तर सुनने के लिए सभी सभासद उत्सुक थे। आज सावित्री की परीक्षा का दिन है, इसी उत्तर पर सावित्री के आदर्श नारी होने की नींव रक्खी जानी है। इन शब्दों से वह कुछ विचलित[1] न हुई। उसने निवेदन किया "पिता जी, दान एक बार दिया जाता है। मैंने अपने आपको सत्यवान् के चरणों में अर्पण करने का संकल्प कर लिया है। नदियां अपना प्रवाह भले ही उलट लें, चन्द्रमा तथा सूर्य अपनी गति बदल दें किंतु मैं अपने सङ्कल्प को नहीं बदल सकती" यह सुन नारद जी को भी यही कहना पड़ा कि सावित्री का सत्यवान् के साथ विवाह हो जाना चाहिए।

नारद जी के कहने पर महाराज अश्वसेन ने सत्यवान् के साथ सावित्री के विवाह का निश्चय कर लिया। साथ ही यह भी निश्चय ठहरा कि यदि द्युमत्सेन से यहां बरात लाने को कहा जायगा तो उसे अतीव कष्ट होगा, क्यों कि दरिद्रता के कारण वे राजोचित ठाठ बाट के साथ न आ सकेंगे। इस लिए सावित्री को वन में लेजाकर वहीं सत्यवान् के साथ विवाह कर देना ठीक होगा।

निदान ज्योतिषियों से लग्न वेला ठहरा उन्होंने वन को प्रस्थान किया।

१ विचलित न हुई, न घबराई।

जब अन्धमुनि और उनकी स्त्री ने यह समाचार सुना तो उनके हर्ष की सीमा न रही, क्योंकि उन्हों ने स्वप्न में भी कभी यह न विचारा था कि हमारे पुत्र का विवाह अश्वपति की कन्या से होगा। इस से भी बढ़कर उनके हर्ष का कारण यह था कि सत्यवान् का विवाह उस कन्या से होगा जिसने केवल एक रात्रि ही उनके आश्रम में रहकर न केवल उनके किन्तु सभी वनवासियों के चित्तों को मुग्ध कर दिया था।

जब साविश्री और सत्यवान् का शुभ विवाह हो चुका तो दहेज में साविश्री को पितृकुल से अनेक भूषण मिले थे। श्वशुर-गृह में पहुँचते ही उसने उन सबको उतार कर वनवासियों के वल्कल वस्त्र पहिन लिए। यह कैसे सम्भव था कि श्वशुर और श्वश्रू के वनवासियों के वेश में रहते और प्राणप्रिय पति के जटा-जूट रखते साविश्री रत्न-आभूषण धारण करती। साविश्री भी अब उनके समान वनवासिनी हो गई।

उसके श्वश्रू श्वशुर अन्धे थे, इस कारण अब आश्रम का सभी काम उसे करना पड़ता था, जिसे वह हर्ष तथा उत्साह से करती थी। बाल्यावस्था में तन मन से माता पिता की सेवा की थी, अब सास-ससुर और पति की सेवा को ही अपना मुख्य कर्तव्य समझने लगी। यही उसका नित्य कर्म था। जब सत्यवान् कुल्हाड़ी लेकर वन में लकड़ी काटने ज.. तो पीछे साविश्री भी पति की दीर्घ आयु के लिये अपने इष्ट देवता का आराधन करती रहती, क्यों कि नारद जी के मुख से उसे सत्यवान् की मृत्यु का दिन घड़ी सभी विदित हो गया था।

ज्यों २ दिन बीतते थे सावित्री की चिन्ता बढ़ती जाती थी। जब उसके विवाह को एक वर्ष हो गया तो उस के चित्त की चञ्चलता और भी बढ़ने लगी। वह इसे बहुत छिपाने का यत्न करती किन्तु उसके आन्तरिक[1] भावों को मुख की उदासीनता ही प्रकट कर देती थी। सास-ससुर ने बहुत आग्रह से पूछा पर वह क्या कहती !

जब नारद जी की बताई हुई अवधि में केवल चार दिन रह गए, तो उसने चार दिन का उपवास धारण किया। एकान्त में एकाग्रचित्त से ईश्वराराधन में लग गई। चार दिन तक न खाया न पीया और चट्टान की नाईं एक स्थान में निश्चल हो कर जमी रही। चौथे दिन व्रत समाप्त कर अभी उठी थी कि उसको ज्ञात हुआ कि सत्यवान् लकड़ी तथा फलादि लेने के लिए वन में जाने को तैयार है। यह सुन पहले तो उसे रोका किन्तु जब सत्यवान् ने न माना तो आप भी उसके साथ जाने के लिए उद्यत हो गई। एक तो चार दिन के निराहार व्रत से उसका शरीर बहुत कृश[2] हो गया था, दूसरे रात्रि का समय था। इस कारण सत्यवान् उसे कैसे साथ ले जाना स्वीकार कर सकता था ? परन्तु सावित्री का आग्रह इतना दृढ़ था कि उसे साथ ले जाना ही पड़ा।

दोनों ने वन की ओर प्रस्थान किया। जब ये एक सघन वन में पहुँचे तो सत्यवान् कुल्हाड़ी लेकर एक वृक्ष पर चढ़ गया और सावित्री नीचे खड़ी उसकी ओर टकटकी

---

१ आन्तरिक, मानसिक। २ कृश, निर्बल।

कुछ देर बाद सचेत हो वह उठ बैठा। थोड़ी देर तक प्रेमालाप करने के पश्चात् दोनों ने घर की ओर प्रस्थान किया। पृष्ठ १२६

लगाये देखती रही। जो जो संकल्प सावित्री के मन में उस समय उठ रहे थे उनका वर्णन करना कठिन है। नारद जी के कथनानुसार सत्यवान् का मृत्यु-क्षण आ ही गया था।

सत्यवान् को उस वृक्ष की एक लकड़ी काटते अभी थोड़ा समय हुआ था कि अचानक उसके सिर में पीड़ा होने लगी। कुछ देर तक उसे सहन किये लकड़ी काटता रहा, किन्तु जब पीड़ा बहुत बढ़ कर असह्य[1] होगई, तो सत्यवान् नीचे उतर आया और सावित्री की गोद में सिर रख कर लेटते ही अचेत हो गया। सावित्री जिधर देखती उधर ही अन्धकार के बिना कुछ न दीख पड़ता था। अन्धकार की वृद्धि के साथ साथ ही वन की भीषणता भी क्रमशः बढ़ती जाती थी। उस भयङ्कर समय में असहाय, अबला, सावित्री रोग-ग्रस्त पति को गोदी में लिये बैठी थी, तो भी उसका मन थोड़ा भी विचलित न हुआ।

सत्यवान् अभी तक उसकी गोद में सिर रक्खे पड़ा था। धीरे धीरे उसकी सांस रुकने लगी। उस समय सावित्री की आत्मा इतनी दृढ़ हो गई कि उसके चित्तमें थोड़ासा विक्षोभ[2] भी न हुआ। वह शान्ति-पूर्ण नेत्रों से पतिदेव का मुख निहारती रही। कुछ देर के बाद सत्यवान् के श्वास बन्द हो गये। फिर भी सावित्री सत्यवान् को गोद में लिये उस के मुख पर दृष्टि जमाये निश्चल मूर्त्ति की भांति बैठी रही। इतने में चारों ओर बिजली का सा प्रकाश हुआ। अब तक सावित्री ने पति

१ असह्य, सहन करने के अयोग्य। २ विक्षोभ, मालिन्य, अशांति

ने मुख से दृष्टि नहीं हटाई थी, किन्तु अब उस से न रहा गया। जब सामने देखा तो एक दिव्यमूर्त्ति खड़ी दिखाई दी। सावित्री ने हाथ जोड़ उसे प्रणाम किया और उस से नाम तथा आने का कारण पूछा। उस दिव्यमूर्त्ति ने अपना नाम यम बताया। यह जान गई कि यह सत्यवान को लेने आया है। उसने सत्यवान के शिर को गोदी से उठाकर भूमि पर रख दिया और आप पीछे हट कर खड़ी होगई जब यम सत्यवान के प्राण लेकर चल पड़ा तो सावित्री उस के पीछे २ होली। दोनों दूर तक निकल गये। मार्ग में यम ने सावित्री को पीछे आते देख उसे घर लौट जाने को बहुत समझाया सावित्री ने उत्तर दिया 'महाराज, मेरा घर तो आप के पास है। जिधर इसे ले जाओगे उधर ही मैं जाऊंगी" । यम फिर चल पड़ा और वह जितना शीघ्र चलता था, सावित्री भी उतनी ही जल्दी चलती जाती थी। कुछ दूर जाकर धर्मराज ने फिर खड़े होकर कहा "सावित्री तू कहां चली आती है ? मेरे साथ चलना तेरे लिये असम्भव है" ।

सावित्री ने कहा "प्रभो, मेरे पतिदेव जहां जा रहे हैं वहीं मैं भी जाऊंगी। स्वामी सहगमन नारी का परम धर्म है।" इन बातों से सन्तुष्ट होकर यम ने सावित्री से कहा "सत्यवान् के जीवन के सिवाय तुम और जो कुछ चाहो मांग लो"। सावित्री ने सोचा, स्वामी के पश्चात् सास ससुर मेरे पूज्य हैं। इस कारण ऐसा वर मांगू जिससे उनका हित हो। यह विचार यमदेव से प्रार्थना की "महाराज, मैं चाहती हूं कि मेरे सास ससुर के नेत्र अच्छे हो जायँ और उन्हें अपना खोया हुआ राज्य मिल जाये" यम ने यह वर दे दिया।

जब यह चला तो सावित्री ने फिर भी उसका पीछा न छोड़ा। उसे खड़े होकर फिर कहना पड़ा कि तू लौट जा। परन्तु पातिव्रत धर्म पर दृढ़ निश्चय किये सावित्री यह कैसे मान सकती थी? यम ने फिर दूसरा वर मांगने को कहा। सावित्री ने कहा "महाराज, मेरे पिता के सौ पुत्र हों मैं यही मांगती हूं।" यम ने उत्तर दिया "यही होगा"। यह कह कर यम फिर चल पड़ा और सावित्री भी पूर्ववत् उसके पीछे चलने लगी। यम फिर खड़ा होनेको बाध्य हुआ और सावित्री को लौट जाने बहुत कुछ समझाया। किन्तु सावित्री ने अपना आग्रह न छोड़ा। यम ने कहा—"सावित्री, इस बार मैं तुझे अन्तिम वर देता हूं। पति जीवन के विना जो चाहो मांगलो"। सावित्री बड़ी बुद्धिमती थी। उसने सोचा कि सीधा पति-जीवन मिलना तो असम्भव है। अब किसी ढंग से अपना मनोरथ सिद्ध करना चाहिये। यह विचार उसने कहा "महाराज, मैं चाहती हूं मैं अपने पति के द्वारा सौ पुत्रों की जननी बनूं"। यमने यह वर भी देदिया।

यम फिर चल पड़ा और फिर भी सावित्री ने उस का पीछा न छोड़ा। यम फिर खड़ा हो गया और कहने लगा, 'सावित्री जो कुछ तूने मांगा, मैं ने वही तुझे दे दिया। अब तेरा आना निष्फल है।' सावित्री ने उत्तर दिया कृपानाथ, आपने अभी वरप्रदान किया है कि पति द्वारा मेरे सौ पुत्र होंगे। यह वर कब सफल हो सकता है जब कि मेरे पति को ही आप ले जा रहे हैं।" यह सुन यम सत्यवान् को छोड़ने

के लिये बाध्य हो गया। उसने मुक्त कण्ठ से सावित्री के पातिव्रत्य की स्तुति की।

अपने एकमात्र जीवनधार पतिदेव की प्राप्ति से सावित्री को अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ। लौट कर ज्योंही वह सत्यवान् के शव के पास पहुंची तो उसमें प्राण-सञ्चार होने लगा। कुछ देर बाद सचेत हो वह उठ बैठा। थोड़ी देर तक प्रेमालाप करने के पश्चात् दोनों ने घर की ओर प्रस्थान किया। सत्यवान् का शरीर बहुत दुर्बल होगया था। इस लिये सावित्री ने पांच दिन कुछ न खाने पीने के कारण अत्यन्त अशक्त हो जाने पर भी प्राणप्रिय सत्यवान् को कंधे पर उठा लिया।

उधर सत्यवान् के माता पिता पुत्र तथा पुत्र-वधू के लिये बड़े व्याकुल हो रहे थे। उन्हों ने समस्त रात्रि उन्हें वन में ढूंढ़ा, किंतु कुछ पता न चला। वे बड़े शोक-ग्रस्त पड़े थे। जब प्रातःकाल हुआ तो सावित्री और सत्यवान् ने आकर उनके चरणों में प्रणाम किया। उस समय धर्मराज के वरदान के कारण उनकी आंखें खुल गई थीं। इतने में शाल्वदेश से समाचार आया कि सेनापति ने शत्रु को पराजित कर द्युमत्सेनका राज्य लौटा लिया है। दूसरे दिन महाराज अश्वपति भी अपनी कन्या सावित्री को देखने के लिये वन में आए। राजा अश्वपति सत्यवान् की मृत्यु के विषय में जानते थे, इसलिए पूरे एक वर्ष के बाद वे आए थे। सावित्री ने अभी तक उसदिन

१ मुक्तकण्ठ से, दिल खोलकर। २ शव, लोथ।

जब वह चला तो सावित्री ने फिर भी उसका पीछा न छोड़ा। उसे खड़े होकर फिर कहना पड़ा कि तू लौट जा। परन्तु पातिव्रत धर्म पर दृढ़ निश्चय किये सावित्री यह कैसे मान सकती थी? यम ने फिर दूसरा वर मांगने को कहा। सावित्री ने कहा "महाराज, मेरे पिता के सौ पुत्र हों मैं यही मांगती हूं।" यम ने उत्तर दिया "यही होगा"। यह कह कर यम फिर चल पड़ा और सावित्री भी पूर्ववत् उसके पीछे चलने लगी। यम फिर खड़ा होनेको वाध्य हुआ और सावित्री को लौट जाने बहुत कुछ समझाया। किन्तु सावित्री ने अपना आग्रह न छोड़ा। यम ने कहा-"सावित्री, इस बार मैं तुझे अन्तिम वर देता हूं। पति जीवन के विना जो चाहो मांगलो"। सावित्री बड़ी बुद्धिमती थी। उसने सोचा कि सीधा पति-जीवन मिलना तो असम्भव है। अब किसी ढंग से अपना मनोरथ सिद्ध करना चाहिये। यह विचार उसने कहा "महाराज, मैं चाहती हूं मैं अपने पति के द्वारा सौ पुत्रों की जननी बनूं"। यमने यह वर भी देदिया।

यम फिर चल पड़ा और फिर भी सावित्री ने उस का पीछा न छोड़ा। यम फिर खड़ा हो गया और कहने लगा, 'सावित्री जो कुछ तूने मांगा, मैं ने वही तुझे दे दिया। अब तेरा आना निष्फल है।' सावित्री ने उत्तर दिया कृपानाथ, आपने अभी वरप्रदान किया है कि पति द्वारा मेरे सौ पुत्र होंगे। यह वर कब सफल हो सकता है

की घटना की बात किसी को नहीं कही थी, किन्तु पिता से उसने सब बातें कहदीं। उसकी अद्भुत कथा सुनकर सबको विस्मय तथा आनन्द हुआ।

चाहे बहुत से पुरुषों का इस कथा के बहुत से अंशों में मतभेद हो, किंतु इसमें सन्देह नहीं कि सावित्री के जीवन ने समस्त स्त्रीजाति के सम्मुख जो उच्चादर्श रखा है वह संसार भर की किसी दूसरी स्त्री के जीवन में नहीं मिल सकता।

कहने में तो यदि भारत वर्ष को ही लें तो इसी में इतनी रमणियां हो चुकी हैं जिनके गुणों की प्रशंसा अभी तक कानों में गूंज रही है। सीता, दमयन्ती, शैव्या आदि देवियों ने वे वे काम कर दिखाए जिन्हें सुन कर विस्मय स्तब्ध होना पड़ता है। परन्तु उनमें कोई एक अंश प्रधान रहा है।

जिन्हों ने इनके जीवन-चरित्र पढ़े हैं वे विचार कर देख सकते हैं कि सावित्री को छोड़ और किसी के चरित्र में स्त्रियों के उचित समस्त गुणों का एकत्र मिलना कितना कठिन है। सावित्री में जितने सद्गुण पाये जाते हैं वे सभी पूर्ण हैं, अधूरे नहीं। शकुन्तला की नाईं स्नेह में डूब कर वह संसार को भूल नहीं गई। शैव्या की तरह घबरा कर उसने मरने की चेष्टा नहीं की। पार्वती की तरह अपने पति को मुग्ध करने के लिए उसने किसी कृत्रिम उपाय का अवलम्बन[*] नहीं किया। पञ्चवटी में सीता ने जिस प्रकार घबरा कर बिना विचारे लक्ष्मण की भर्त्सना की थी, उस प्रकार सावित्री ने ... नहीं किया।

[*] अवलम्बन, आश्रय।

यह अपने धर्म में इतनी दृढ़ थी कि यह जानकर भी कि सत्यवान् की आयु एक वर्ष मात्र ही शेष है उसने गार्हस्थ्य सुख भोगों पर लात मार अपना धर्म न छोड़ा, पिता के रोकने पर भी सत्यवान से ही विवाह किया।

शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के बल तथा बुद्धिमत्ता सावित्री में कूट कूट कर भरी थी। शारीरिक बल यहां तक कि चार दिन जल तक नहीं पिया, फिर भी जब सुना कि पति वन को जाने वाले हैं, तो उनके साथ वन को चल पड़ी। पति की मृत्यु के बाद यम के पीछे भागती गई, और पति के पुनरुज्जीवित होने पर उसे कंधे पर उठा घर लायी।

मानसिक बल में तो उसने बड़े २ ऋषि, मुनि तथा गुरुओं को भी हरा दिया। पिता के कहने से देश देशान्तरों में फिर कर अपने लिये वर ढूंढना, पति के स्वल्पायु ज्ञात होने पर भी उसके साथ ही विवाह करना और इस रहस्य को वर्ष पर्यन्त अपने मन में ही रख कर उसका उपाय करते रहना, पति का अनुकरण करने के लिए भूषण उतार फेंकना, यमराज जैसे भीषण व्यक्ति के निषेध करने पर भी उसके पीछे चलते रहना और उसके साथ प्रश्नोत्तर करते तनिक न घबराना किसी साधारण व्यक्ति का काम नहीं था।

सावित्री की जीवनी के सम्बन्ध में श्रीचन्द्रनाथ वसु महाशय लिखते हैं—

"सावित्री जैसे आदर्श-रमणी थी—वैसी रमणी दूसरी नहीं हुई। उसके ऐसे सुन्दर देह में यौवन के आरम्भ में

स्वेज़ नहर ।

संसार के सभी मानुषिक[1] व्यवसायों में स्वेज़ नहर एक बड़ा आश्चर्य-जनक व्यवसाय है। सामान्यतः कहीं एक कुएं के खोदने में भी इतने कष्ट झेलने पड़ते हैं तो स्वेज़ सी नहर को खोद बनाना कोई खेल नहीं है। योरप और एशिया का सम्बन्ध जिन कारणों से घनिष्ट हो गया है, उन में स्वेज़ नहर मुख्य है। इस नहर के बनने से पहले विलायत जाने के लिए अफ्रीका के दक्षिणीय 'केप आफ़ गुड होप' की ओर से जाना पड़ता था। जो जहाज़ एशिया से योरप आते जाते थे उनको वहां पहुंचने में महीनों लगते थे। परन्तु अब स्वेज़ के कारण हिन्दुस्थान को पाश्चात्य देशों से वाणिज्य[2] सम्बन्ध रखने के लिए बहुत कुछ सुविधाएं हो गई हैं। महीनों का रास्ता सप्ताहों में और सप्ताहों का रास्ता दिनों में तय होजाता है। हज़ारों कोसों की दूरी पर बैठी इंग्लिश जाति का हिन्दुस्थान पर शासन करना कितना सहज होगया है यह विचारणीय है। यह नहर लाल-सागर (Red Sea) और भूमध्य-सागर (Mediterranean) के बीच में है। इसकी लम्बाई स्वेज़ से सईद बन्दर तक कोई सौ मील है।

एम. डी. लेस्सेप्स नामक प्रसिद्ध इंजिनीयर ने इसे सन् १८६९ ई० में बनाया था। इसके बनाने में कई वर्ष लगे और करोड़ों रुपए खर्च हुए। इसका पांच भिन्न भिन्न सरोवरों

---

१ व्यवसाय, उद्योग। २ वाणिज्य, तिजारत।

से गहरा सम्बन्ध है। इन झीलों की लम्बाई ७५ मील है। जब यह बनी थी तो इस की चौड़ाई १५० से ३०० फीट तक थी तथा गहराई छब्बीस फीट थी। सन् १८६९ में बने जहाज़ों की अपेक्षा आज कल के जहाज बहुत लम्बे चौड़े होते हैं इस कारण नहर की चौड़ाई तथा गहराई बढ़ाने की आवश्यकता पड़ी। बहुत अनुसन्धान[1] के बाद यह निश्चय हुआ कि नहर का आकार दुगुना किया जाय। इस काम के लिये सन् १९०७ में डेढ़ करोड़ रुपये की मंजूरी हुई और कोई दस बारह साल में यह समाप्त हुआ।

३१ दिसम्बर सन् १९०६ तक इस नहर के बनाने में कुल ३६७८६०४२० रुपये खर्च हुए जहां इस पर खर्च बढ़ा है वहां इसकी आमदनी भी बहुत बढ़ गई है। सन् १८७६ में इस से १८७०४८८१४ रुपये की आमदनी हुई और यही बढ़कर १९०६ में ६७११३४७१ रुपये हो गई। जो जहाज़ इससे होकर जाते थे उनकी संख्या भी पहले से कई गुणा बढ़ गई थी। अकेले सन् १९०६ में ही कोई ३९७० जहाज़ इससे हो कर निकले।

नहर की चौड़ाई अधिक न होने से जहाज़ों को बहुत कुछ हानि पहुँचने की सम्भावना थी। जब दो जहाज़ों की मुठभेड़[2] हो जाती थी तो कुछ काल तक जहाज़ों का इधर उधर जाने का रास्ता बन्द हो जाता था। सैंकड़ों जहाज़ कई दिनों तक अटके रहते थे। नहर के अधिकारियों को पानी

---

१ अनुसन्धान, सोचविचार। २ मुठभेड़, टक्कर।

में डूबे हुए जहाज़ के निकालने में बहुत भारी २ इञ्जिन औ मशीनों का प्रयोग करना पड़ता था । इसी कारण स १८८६ ई० तक कोई जहाज़ रात्रि के समय इससे हो क आ जा न सकता था। बहुत खोज के बाद ऐसे विद्युद्दी (Electric lamp) निकाले गए जिनका प्रकाश ८० फी तक पहुँच सकता था। ऐसे लैम्पों की सहायता से जहाज़ रात्रि में चलने लगे। इससे बहुत लाभ हुआ । सन् १८८ से पहले प्रतिशत चार या पांच जहाज किसी न किसी घटना के कारण डूब जाते थे। अब जहाज़ दिन रात चलते रहते हैं, परन्तु कुछ हानि नहीं होती। इसका कारण एक तो यह है कि नहर की गहराई तथा चौड़ाई बढ़ा दी गई है और दूसरा यह है कि जहाजों के आने जाने का प्रबन्ध भी अच्छा हो गया है। नहर के मार्ग में, स्थान २ पर टेलीफ़ून तारवर्की आदि का प्रबन्ध किया गया है । संकट-संदर्शक रङ्ग विरङ्गे लैम्प जहां आवश्यक हैं, लगाए गए हैं । मेल के जहाज़ के सिवाय एक ही तरफ जाने वाले दो जहाज़ एक दूसरे से आगे नहीं बढ़ सकते । सन् १८८६ में एक चेथक नामक जहाज़ किसी दूसरे जहाज़ से टकरा कर डूब गया था जिससे कितने ही दिनों तक इधर उधर का आना जाना बन्द हो गया था। यूरोप के पिछले युद्ध में भी तुर्कों ने एक दो जहाज़ इस नहर में डुबो दिये थे, इस लिये बहुत दिनों तक नहर का रास्ता रुक गया था। जहाज़ों को पुराने मार्ग से जाना पड़ता था। जर्मनी का अंग्रेज़ों से युद्ध ने का एक यह भी उद्देश्य था कि टर्की को साथ मिला

कर उसके द्वारा अंग्रेज़ों से यह नहर छीन लें किन्तु ईश्वर की कृपा से उसकी यह इच्छा निष्फल गई।

संसार भर में अरब का रेगिस्तान बहुत बड़ा मरुस्थल है। इसकी स्वेज़ से कुछ अधिक दूरी नहीं। नहर के अधिकारी सदा इसी डर में रहते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि रेगिस्तान की बालू उड़कर नहर में निरन्तर[1] पड़ते रहने से इसे भर दे। इस लिये इस की खुदाई और सफाई बारहों महीनों होती रहती है। बीसों घनगज़[2] मिट्टी प्रति वर्ष इससे निकाली जाती है। केवल यही नहीं किन्तु इस नहर को वृहदाकार[3] बनाने का परामर्श सदा इसके अधिकारियों के सामने उपस्थित रहता है। अब तो इसको चौड़ा कर यह प्रबन्ध होगया है कि आमने सामने आने जाने वाले जहाज़ अच्छी तरह से एक दूसरे को आरपार कर सकते हैं। सन् १९०४ में इसके इक्कीस नाके और बनाने का विचार था।

नहर के एक छोर से दूसरे छोर तक बीस से अधिक स्टेशन बन गए हैं। तीन २ मील के अन्तर पर जहाज़ों को आर पार करने के लिए नाके बनाए गए हैं। पहले पहल नहर के इधर उधर की जलवायु बहुत अस्वास्थ्यकर थी। वहां मच्छड़ तथा ज्वर की इतनी अधिकता थी कि लोग सदा रुग्ण ही रहते थे। अब वहां बहुत सफाई रहती है। ज्वर का नाम तक नहीं रहा।

१निरन्तर, लगातार। २ घन, जो फल किसी एक अंक को तीन बार गुणित करने से मिले (Cube) ३ वृहदाकार, बड़े आकार की।

नहर के खुलने के प्रारम्भिक समय में जो माल जहाज़ों पर लदा हुआ नहर से निकलता था, उसका कर छः रुपये टन था। सन् १८८० में इसे घटा कर पांच रुपये कर दिया गया। पश्चात् यह चार रुपये आठ आने हो गया। अब इससे भी कम है।

इस प्रकार ब्रिटिश जाति को और उस के द्वारा दूसरी जातियों को जो लाभ हुआ है उसका वर्णन नहीं हो सकता। हिन्दुस्थान में पहुँचने के लिये यह ऐसा प्रारम्भिक द्वार है जिस की कुञ्जी अंग्रेज़ों के हाथ में है। जब वह चाहें किसी को जाने दें या रोक दें परन्तु अन्तर्जातीय नियमों के आधार पर शान्ति-समय में ऐसा होना असम्भव है। केवल युद्ध समय में ही शत्रुओं का इस में घुस कर हिन्दुस्थान पर आक्रमण करना रोका जा सकता है। ऐसे अवसर के लिये ही नहर के दोनों ओर बड़े २ दृढ़ किले बने हुए हैं।

सकने से बहुत गरम बना हुआ है। हमारा भूलोक ताप खर्च कर चुकने पर, इतना ठण्डा हो गया है कि हम उस में वास कर सकते हैं।

इसी नियम के अनुसार यह अनुमान किया गया है कि कोई ऐसा समय रहा होगा जब सभी लोक बहुत गरम रहे होंगे। उनमें गरमी इतनी रही होगी कि उस गरमी के कारण वे समस्त "गैस" अर्थात् धुवें के रूप में रहे होंगे। धुवें का यह गुण है कि जितना स्थान आस पास पाता है उतना ही चारों ओर फैल जाता है। धुआं खुले स्थान में कभी ठहरा नहीं रह सकता। इस से जाना जाता है कि जब भू लोक सूर्य-लोक, चन्द्र-लोक इत्यादि समस्त लोक धुवें का रूप रहे होंगे, तब उन की ऐसी शकल न रही होगी जैसी हमें आज देख पड़ती है, अर्थात् पृथक् २ लोक न रहे होंगे किन्तु सारे लोक, आदि काल में, एक दूसरे में सम्मिलित रहे होंगे और चारों ओर धुवें के अतिरिक्त और कुछ न रहा होगा। धीरे २ जब इस धूममय गोलाकर लोकों के समूह से गरमी निकल कर चारों ओर फैलने लगी और वह समूह ठण्डा होने लगा तब इसके कई भाग हो गए। सबसे बड़ा भाग सूर्य लोक हुआ जो बहुत बड़ा होने के कारण और काफी गरमी न निकल जाने के कारण अभी तक धूममय बना हुआ है और जिसकी प्रचण्ड गरमी से दूसरे लोक प्रकाश पाते हैं।

जो लोक जितने छोटे हैं उतने ही वे अधिक ठण्डे होगए हैं। जाड़े या गरमी की स्वच्छ रात में आकाश से गिरते

हुए तारे हमें प्रायः दिखाई पड़ते हैं। ये और कुछ नहीं केवल छोटे २ लोक हैं, जो सूर्य-लोक के चारों ओर सदैव बड़ी शीघ्रगति से घूमा करते हैं। हमारे भूलोक के बहुत निकट आ जाने पर इसकी आकर्षिणी शक्ति उन्हें खींच लेती है, जिससे उनकी गति बड़ी तेज़ हो जाती है और शीघ्र वेग के कारण वे वायु से बड़े ज़ोर की रगड़ खाते हैं जिस से वे गरम होकर प्रज्वलित हो उठते हैं। बस उसी समय हम उन्हें गिरते हुए देखते हैं। ध्यान पूर्वक देखने से उनके गिरने के बाद तक उनकी पतनरेखा अर्थात् गिरने के मार्ग में कुछ २ प्रकाश बना रहता है। हम कभी २ सुनते हैं कि अमुक स्थान पर आकाश से पत्थर या धातु की वर्षा हुई। यह पत्थर या धातु और कुछ नहीं, यही गिरा हुआ लोक होता है जो हमारे भूलोक की भांति पत्थर और धातु का समूह था। यह इतना ठण्डा हो जाता है कि उस में किसी जीव जन्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती। कहते हैं कि मुसलमानों के पवित्र तीर्थ मक्के शरीफ़ में जो काबे का प्रसिद्ध पत्थर है और जिसे चूमने के लिए संसार के समस्त भागों से प्रतिवर्ष लाखों मुसलमान यात्रा करते हैं, वह और कुछ नहीं, यही आकाश से गिरा हुआ किसी लोक का टुकड़ा है। आकाश से गिरने के कारण मुसलमान लोग उसे उसी प्रकार ईश्वरीय पवित्र पदार्थ मानने लगे हैं जिस प्रकार हिन्दू पृथ्वी के भीतर से निकलती हुई ज्वालामुखी की ज्योति को दैवी ज्योति मान कर पूजते हैं।

किसी झाड़ या फानूस के लटकाने वाले तिकोने कांच (Prism) पर यदि हम प्रकाश डालकर नेत्रों द्वारा देखें

तो उस कांच से पार होकर वह उज्ज्वल प्रकाश वर्षा कालीन[1] इन्द्रधनुष के सदृश नीले लाल इत्यादि कई रङ्गों में परिवर्तित होकर दिखाई पड़ने लगता है। अर्थात् साधारण प्रकाश जब इस त्रिकोण कांच के द्वारा हमारे नेत्रों तक आता है तब उस के सात रङ्ग हो जाते हैं। यदि इस साधारण प्रकाश को पहले किसी विशेष धातु के भीतर से छान लें और तब उस त्रिकोण कांच पर डालें तो वह धातु स्वयं रोशनी के सात रङ्गों में से एक विशेष रङ्ग को खा जाती है जिससे हम फिर छः ही रङ्ग देख सकते हैं और सातवें अदृष्ट रङ्ग के स्थान पर एक काली लकीर दिखाई देती है। विशेष पदार्थ के विशेष रङ्ग को खा जाने के गुण के नियम के अनुसार हम पता लगा सकते हैं कि सूर्य का या अन्य लोकों का प्रकाश किन किन रासायनिक[2] पदार्थों से पार होकर और छन कर हमारे पास तक आता है। इस नियम के अनुसार सूर्यलोक जिस गैस का बना हुआ है अथवा चन्द्रमादि दूसरे लोक जिन २ पदार्थों के बने हुए हैं उन सब का पता लगाया गया है।

इस खोज का सारांश यह है कि अखिल लोक आदि काल में धूममय थे धीरे धीरे ठण्डे हो जाने पर अलग अलग होकर वे ठोस बन गए हैं। उन में सूर्य-लोक तो अभी तक इतना गरम बना हुआ है कि उस में किसी जीव या वृक्ष का टिकाव नहीं हो सकता। दूसरी ओर चन्द्रादि लोक छोटे होने के कारण इतने ठण्डे होगए हैं कि उनमें भी जीवधारियों

---

१ वर्षा कालीन-वर्षा काल में होने वाले। २ रासायनिक भौतिक।

या वृक्षों की उत्पत्ति नहीं हो सकती। एक मात्र हमारा यह भूलोक ही ऐसा है जो न बहुत ठण्डा है और न बहुत गरम जिससे यहां जीव जन्तुओं और वृक्षों की उत्पत्ति हो सकती है। बस इसी प्रकार धुवें से हमारी पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। अब प्रश्न यह है कि पृथ्वी की उत्पत्ति हुए कितना समय हुआ।

इस विषय पर तीन प्रकार के मत अधिकतर प्रचलित हैं. एक यह कि कुछ सहस्र वर्ष पहले इस पृथ्वी की रचना हुई। दूसरे यह कि कुछ करोड़ वर्ष हुए जब इसकी उत्पत्ति हुई। तीसरी यह कि हमारी भूमि की उत्पत्ति हुए इतना अधिक समय हुआ कि हम उसका अनुमान तक नहीं कर सकते।

इनमें से पहला मत भिन्न २ धर्मावलंबियों का है। ईसाई धर्मवाले कहते हैं कि कोई पांच छः हजार वर्ष हुए जब ईश्वर ने कुछ शब्द उच्चारण किए. जिससे पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा इत्यादि लोक बन गए। इसी प्रकार दूसरे धर्मानुयायी भी पृथ्वी की रचना का समय कम या ज़ियादह आज से कुछ हज़ार वर्ष पूर्व बताते हैं।

दूसरा और तीसरा मत विज्ञान-वेत्ताओं का है। उन के मत का आधार प्राकृतिक घटनाएं हैं। नदियां जब पर्वतों से निकल कर नीचे आती हैं. तब अपने प्रवाह से मार्ग की चट्टानों को काटकर घाटियां बना देती हैं। इसमें बहुत समय लगता है। विज्ञान वेत्ताओं ने किसी विशेष नदी का आश्रय लेकर यह देखा कि एक वर्ष या दश वर्षों में वह किसी चट्टान का कितना भाग काटती है। फिर उसकी घाटी के सारे काट

का जांचकर हिसाब लगा लेते हैं कि इस नदी को वहते इतने वर्ष हुए होंगे। इस प्रकार हिसाब लगाने से पता लगा है कि पृथ्वी बहुत पुरानी है। उसकी रचना हुए करोड़ की कौन कहे अरब खरब वर्ष हो गए।

विज्ञान-वेत्ताओं का एक अन्य दल है, जो इस प्रकार पृथ्वी की रचना का अनुमान करने के प्रतिकूल है। इस दल के पण्डितों का कहना है कि जब कोई नदी किसी पहाड़ के ऊपर से निकलकर नीचे आती है, तब वह अपने तीव्र प्रवाह के साथ बड़े २ पत्थरों को बहा लाती है। उन पत्थरों की रगड़ खा खा कर नदी के नीचे की ज़मीन गहरी बनती जाती है, इस कारण नदी के किनारे नोकदार बन जाते हैं। उन किनारों को वर्षा और बाढ़ काट कर पीछे को हटा देते हैं। तब घाटी बन जाती है। इस प्रकार स्वयं अपनी शक्ति से घाटी नहीं बनती, किन्तु आरम्भ में पृथ्वी की नवीनता के कारण नदी की धाराएं बह बह कर पत्थर आदि की रगड़ या वर्षा और बाढ़ से घाटियाँ बना देती हैं। जब नदी को बहते बहुत समय हो जाता है और उन के मार्ग में पत्थर आदि नहीं रह जाते तथा उसके किनारे नुकीले न रह कर सम हो जाते हैं, तब निस्सन्देह नदी की धारा ही घाटियों को अधिक विस्तृत करती है।

इस श्रेणी के विज्ञान वेत्ता दूसरे ही प्रकार से पृथ्वी की रचना का अनुमान करते हैं। वह पहले इस बात का पता लगाते हैं कि एक फुट बालू मिट्टी और मछलियों की हड्डियां आदि पदार्थों को समुद्र के [illegible] में [illegible] होते कितने वर्ष

पड़े रहकर दिन पर दिन जमा होते जाते हैं। उनमें से कुछ पदार्थ, किसी न किसी रूप में समुद्र से निकल जाते हैं। जैसे समुद्र में रहने वाले अनेक प्रकार के जीव-जन्तु चूने को खा जाते हैं, जिससे उनकी हड्डी और सीप बनती है। दूसरे कई प्रकार के जीव और वृक्ष बालू को पचा जाते हैं। लोहा और क्षार भारी होने से समुद्र के पेंदे में जमा होजाते हैं, किन्तु नमक ऐसी वस्तु है जिसे न कोई जन्तु ही खाते हैं और न वह समुद्र के पेंदेही में हलका होने के कारण, जमा हो सकता है। नमक समुद्र के पानी में घुला रहता और ज्यों २ अधिक समय होता जाता है त्यों २ समुद्र का जल नमक की अधिकता के कारण अधिकाधिक खारी होता जाता है। हिसाब लगाया गया है कि समुद्र में अब तक कोई एक खरब बीस अरब टन नमक जमा हुआ है और प्रति वर्ष एक करोड़ छप्पन लाख टन जमा होता है। इस लिए यदि हम मानलें कि आरम्भ में समुद्र का पानी शुद्ध और मीठा था और नदियां अब की भांति सदा समान भाव से नमक बहा कर समुद्र में डालती रहती हैं तो हिसाब लगता है कि पृथ्वी को उत्पन्न हुए सात करोड़ सत्तर लाख वर्ष होगए।

बहुत से विज्ञान-वेत्ता इस प्रकार पृथ्वी की उत्पत्ति का हिसाब लगाने के भी प्रतिकूल हैं। उनका कहना है कि यह कैसे मान लिया जाय कि आरम्भ में समुद्र का जल मीठा और शुद्ध था और नदियां सदा से नमक, समान परिमाण में बहा कर समुद्र में डालती रहती हैं। इस के अतिरिक्त समुद्र में प्रायः बड़ी २ बाढ़ें आया करती हैं जो समुद्र के जल को

फौवारों के रूप में पृथ्वी पर डाल देती हैं। इन फौवारों के साथ बहुत सा नमक मिला रहता है, जिससे समुद्र में नदियों के द्वारा लाए गए नमक का बहुत सा भाग पृथ्वी पर जाकर जमा हो जाता है।

पृथ्वी के भीतर उसके ऊपरी भाग की अपेक्षा अधिक गर्मी होती है। किसी खान के भीतर जाने पर या किसी कुएं के नीचे उतरने पर अधिक गरमी मालूम पड़ती है। पृथ्वी की सतह पर और उसके भीतर की गरमी में जो अन्तर है, उसका हिसाब लगा कर अनुमान किया गया है कि पृथ्वी की रचना हुए कोई दस करोड़ वर्ष हो गए।

पहाड़ों की चट्टानों पर भिन्न २ प्रकार की धातुएं पाई जाती हैं। पता लगा है कि चट्टानों पर यूरेनियम नामकी एक धातु होती है जो कई पदार्थों से बनी होती है। समय पाकर उस में से कितने ही पदार्थ अलग हो जाते हैं। इसी नियम के अनुसार समय पाकर उस में से होलियम नामक पदार्थ अलग हो जाता है। यह पदार्थ फिर समय पाकर जस्त धातु के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार किसी चट्टान से यूरेनियम धातु लेकर विद्वान् ये देखते हैं कि उसमें कितना जस्त बन गया है। इस से उस चट्टान की आयु का अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार हिसाब लगाने से कई चट्टानों की आयु का अनुमान एक अरब वर्षों से भी अधिक किया गया है। इस रीति से पृथ्वी की उत्पत्ति का अनुमान किया जा सकता है।

इस प्रकार भिन्न २ वैज्ञानिक घटनाओं और नियमों के द्वारा पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में भिन्न भिन्न अनुमान किए गए हैं। यद्यपि इस बात का ठीक २ पता लगाना असंभव है कि पृथ्वी कब बनी, किन्तु पूर्वोक्त वैज्ञानिक प्रमाणों से जाना जाता है कि पृथ्वी की उत्पत्ति हुए करोड़ या कई अरब खरब वर्ष हो गए।

(जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, इ० इ०)

"सरस्वती से"

महाराज हर्ष-वर्धन

महाराज हर्षवर्धन बड़े विद्वान् और धर्मात्मा पुरुष हो गये हैं। उन्होंने अपने पुरुषार्थ तथा अन्यान्य सद्गुणों से संसार में अपना नाम अमर कर दिया है।

ईसा की सातवीं शताब्दि में इनका जन्म हुआ था। आप का दूसरा नाम शिलादित्य, और पिता का नाम प्रभाकरवर्धन था। दिल्ली के समीप स्थानेश्वर में आप की राजधानी थी। महाराज हर्ष वर्धन बाल्यावस्था में ही अपने पिता के समय में रणकौशल में प्रवीण बन चुके थे। इनकी सहोदर एक भगिनी और थी जो देवी राजेश्वरी के नाम से विख्यात हुई।

महाराजा प्रभाकरवर्धन के स्वर्गवास होने पर इनके बड़े पुत्र स्थानेश्वर के अधिकारी बने। इधर राजेश्वरी देवी का विवाह मालवाधिपति के साथ हो चुका था। राजेश्वरी सती धर्मता और विदुषी थी। विवाह होने के कुछ दिन पश्चात् मालवेश्वर एक रिपु के हाथ से मारे गये और उस रिपु ने देवी राजेश्वरी का सतीत्व नष्ट करना चाहा। इस काम की साधना के लिए उसने राजेश्वरी को कैद भी कर लिया, किन्तु विदुषी वीरबाला राजेश्वरी ने कारागार के असह्य दुःखों की तनिक भी पर्वाह न करते हुए संतोषपूर्वक सब को सहन किया, और अपने अपूर्व साहस से सतीत्व की रक्षा करने में ही वह दत्त चित्त रही।

उपर्युक्त समाचार महाराजा राज्यवर्धन को मिलते ही वे तत्काल एक बड़ी सेना लेकर मालवे पर चढ़ आये और

मालवेश्वर के वैरी के साथ भयंकर युद्ध किया। अंत
वह पराजित हो कर भाग गया और उसी समय राज्यव
ने अपनी भगिनी को कारागार से मुक्त कर दिया। इस
पश्चात् वे स्थानेश्वर को लौटने लगे, परन्तु मार्ग में उन्हें कि
ने मार डाला। यह समाचार जब स्थानेश्वर पहुंचा, तो ह
वर्धन ने बड़ा शोक मनाया और एक बड़ी सेना एकत्रित क
वैरी से बदला लेने के लिए मालवे की ओर प्रस्था
किया। जिस प्रकार भुवन भास्कर के आगमन से अंधका
का लोप हो जाता है, उसी प्रकार महाराज हर्षवर्धन के प
चते ही शत्रु बंगाल की ओर भाग गया, फिर बहुत खोजने प
भी वह न मिला। इधर देवी राजेश्वरी कारागार से छू
मालवे के निकटवर्ती पर्वतों में चली गई।

जब प्रिय भगिनी से मालवे में भी भेंट न हुई तो हर्षवर्ध
बड़े दुःखी हुए। इसके पश्चात्, बहुत खोज करने पर उन
एक महारण्य में देवी राजेश्वरी के दर्शन हुए। किन्तु उस
समय का दृश्य ही और था। देवी राजेश्वरी काष्ट-चिता बन
कर उसमें अपने शरीर का बलिदान करने को प्रस्तुत थीं
पर जब हर्षवर्धन द्वारा उसको भाई की मृत्यु का समाचार विदित
हुआ तो वह बहुत दुःखी हुई। तब राजेश्वरी को महाराज
हर्षवर्धन ने धैर्य्य दिया और उसे इस प्रकार आत्मबलि करने
से निषिद्ध किया। राजेश्वरी ने भी छोटे भाई के आग्रह को
स्वीकार कर स्थानेश्वर आने का वचन दिया।

महाराज हर्ष-वर्धन के स्थानेश्वर पहुंचते ही वहां की
प्रजा ने उन्हें राज्याधिपति बनाने के लिए निवेदन किया।

हर्षवर्धन ने इस बातको बड़े प्रेमसे स्वीकार करते हुए कहा कि "मैं इस राजसत्ता को ग्रहण करनेके पूर्व एक बौद्ध महात्मासे सम्मति लूंगा।" अन्त को महात्मा की ओर से भी सम्मति मिल गई कि 'तुम राज्यसत्ता ग्रहण करने के लिये पूर्णतया योग्य हो और तुम जैसे साहसी वीरों के लिये ही यह मञ्च[1] उपयुक्त है। इस के अनन्तर बड़ी सावधानी से महाराज हर्षवर्धन ने राज्यसत्ता का भार अपने सिरपर लेलिया, किन्तु फिर भी मन में इस बात की शंका होने से कि मैं राज्यपद के योग्य नहीं हुआ उन्हों ने अपना नाम कुमार शिलादित्य रख कर अपने नाम से सम्वत् चलाया। इस सम्वत् का आरम्भ ईसा के सन् ६०६ के अक्तूबर से हुआ। किन्तु खेद है कि यह सम्वत् अधिक दिनों तक नहीं चला। राज्याभिषेक होने के कुछ ही दिन बाद महाराज हर्षवर्धन ने दिग्विजय की तैय्यारी की। सब से प्रथम अपने आस पास के राजाओं पर आक्रमण कर उन्हें वशीभूत किया तत्पश्चात् बाहिर के बड़े २ राज्यों पर चढ़ाई कर लगभग सभी ओर से विजय प्राप्त की किन्तु अन्त में दक्षिण में हार खानी ही पड़ी और विवश हो थे स्थानेश्वर को लौट आये। तथापि सम्पूर्ण उत्तरीय भारत पंजाब, बंगाल आदि प्रदेश उनके अधिकार में आगये।

महाराज हर्षवर्धन ने अपना राज्य प्रबन्ध बड़ी चतुरता से किया और अच्छे २ राजनियम बनाये। इसका यह प्रभाव पड़ा कि समग्र राज्य में मार-काट, लूट, झपट, अंधाधुन्धी आदि नाम मात्र के लिए न रही, निर्बलों पर बलवानों का

---

१ मञ्च, सिंहासन।

अन्याय होना रुक गया और सब लोग एकता और शान्ति-पूर्वक रहने लगे।

हर्षवर्धन का समय आमोद-प्रमोद तथा विषय वासना में व्यय नहीं हुआ। वे चातुर्मास में देव-सेवा किया करते थे, और प्रत्येक विषय का पूरा ध्यान रखते थे। उन्हें अपने सुख की चिन्ता न थी, किन्तु प्रजा के सुख शांति में ही वे अपना सुख और श्रेय समझते थे।

न्यायालय में बड़े २ अपराधों की संख्या बहुत थोड़ी होती थी। कदाचित् कोई अपराध करता तो अपराधी को इतना उग्र दण्ड दिया जाता था कि उसकी दशा देख लोग स्वयं डरने लग जाते थे। उस समय फांसी का दंड प्रचलित न था, किन्तु चोरों के हाथ काट डाले जाते थे कि जिससे फिर उन में ऐसे दुष्कर्म करने का साहस ही न रहे।

महाराज हर्षवर्धन विद्या के बड़े रसिक थे। वे स्वयं भी बड़े विद्वान् थे। संस्कृत का प्रख्यात कवि बाणभट्ट उनके ही दर्बार में था। स्वयं महाराज संस्कृत की ग्रंथ-रचना किया करते थे। नागानन्द[1] और रत्नावली[2] उन्हीं के बनाये हुए हैं।

हर्षवर्धन बड़े दानी और परोपकारी थे, । भोजन करने से पूर्व वे सहस्रों रुपये का दान किया करते थे। वे प्रति पांचवें वर्ष प्रयाग को जाते और वहां खूब दान करते थे। एक बार उनके साथ चीन के प्रख्यात इतिहास-कार यात्री

---

१ नागानन्द संस्कृत में, एक अच्छा नाटक है। २ रत्नावली संस्कृत में, नाटिका है।

'हुएनसांग' (आईसिंग) भी थे। इस समय उन्होंने इतना दान किया कि शरीर पर के वस्त्र तक भी दे दिये। तत्पश्चात् उन्हें देवी राजेश्वरी से वस्त्र मंगवा कर पहनने पड़े।

अपनी प्रजा के हितार्थ सड़कें, नहरें, और वाटिकाओं की भी उन्हों ने योजना कर दी थी। प्रजा के संरक्षणार्थ सहस्रों सिपाही सदा तैयार रहते थे। आबकारी का एक अलग ही विभाग था। इसी प्रकार चुंगी का महसूल भी लिया जाता था। जब कोई वस्तु बाहिर से आती अथवा यहां से जाती तो उस पर भी कर लिया जाता था, किन्तु यह टैक्स बहुत थोड़ा था। यही कारण था कि लोगों को यह भार सा नहीं जान पड़ता था। किन्तु विषैली वस्तुओं के प्रचार के बन्द करने के लिये उन पर महसूल अधिक था।

ये बौद्ध-धर्मावलंबी थे। इन्हों ने अपने धर्म के प्रचारार्थ स्थान २ पर स्तूप बनवाये थे। वे स्तूप आजकल भी गंगा, यमुना के बीच दुआव में कहीं २ दृष्टिगोचर होते हैं। महाराज हर्षवर्धन ने बौद्ध धर्म की उन्नति और उसके प्रचार के अर्थ स्थान २ उपदेशक नियत किये थे। इस प्रकार क्रमशः हर्षवर्धन ने बौद्ध धर्म का इतना प्रचार किया कि एक दिन यह भारत का प्रधान धर्म बन गया। किन्तु फिर भी यह बात थी कि किसी को बलात्कार से बौद्ध नहीं बनाया जाता था, किसी प्रकार किसी के धर्म में आक्षेप भी नहीं किया जाता था।

महाराज हर्षवर्धन ने अपने जीवन का अंतिम भाग सन् ६४५ से ६४८ तक बौद्ध धर्म की सेवा में ही व्यतीत

किया था। उनकी बहिन राजेश्वरी देवी महाराज को राज्य कार्य में बड़ी सहायता देती थी। यह महाराज के साथ ह्र्एनसांग के व्याख्यानों को बड़े प्रेम और धर्म से सुनकर शंका-समाधान करती थी।

इस से स्पष्ट है कि प्राचीन समय में स्त्री-शिक्षा का प्रचार था। महाराज हर्षवर्धन ने ४२ वर्ष पर्यन्त राज्य किया और सन् ६५८ ई० में उन्होंने ऐहलौकिक[1] लीला संवरण की।

———

१ ऐहलौकिक लीला संवरण की, इस जगत के है समाप्त किया (मर गये)।

चाणक्य —अवश्य।

नन्द —निःशस्त्र[1] वन्दी की हत्या ! क्या यही तुम्हारा सनातन धर्म है ?

चाणक्य—क्या आज ब्राह्मण को क्षत्रिय के पास आकर सनातनधर्म सीखना होगा ? सुनो, यह हत्या नहीं, यह तुम्हारा मृत्यु दण्ड है और वह दण्ड देता हूं—मैं ब्राह्मण।

नन्द—किस अपराध में ?

चाणक्य—ब्रह्महत्या के अपराध में, ब्राह्मण की सम्पत्ति लूटने के अपराध में, ब्राह्मण के अपराध करने के अपराध में। तुम इसको कहते हो हत्या, पर मैं इसको न्याय विचार कहता हूं और इस विचार के करने का मुझे अधिकार है। नन्द ! मैं ब्राह्मण हूं। तैयार हो जाओ। सिपाहियो ! इसे यूपस्तम्भ से बांध दो।

नन्द—चाणक्य ! मैंने कात्यायन के प्रति और तुम्हारे प्रति अन्याय, अविचार किया था, मुझे क्षमा करो।

चाणक्य-(ठट्ठा करके हँसकर) ठीक ! अक्षर २ ठीक हो रहा है। नन्द ! तुम्हें याद है, उस दिन मैंने कहा था कि एक दिन ऐसा होगा जिस दिन इसी भिक्षुक के पैरों पर गिर कर क्षमा की भिक्षा चाहोगे और मैं वह भिक्षा नहीं दूंगा।

नन्द—ब्राह्मण ! मैं प्राण भिक्षा नहीं चाहता। मैं क्षत्रिय हूं। मैं ब्राह्मण का प्रभुत्व नहीं मानता, परन्तु शठ को घृणा करता हूं, और अपने का गणिका के पुत्र से घृणा करता हूं।

---

१ निःशस्त्र, शस्त्र रहित। गणिका, वेश्या।

मृत्यु का भय मुझे नहीं है। तुम्हारी लाल लाल आंखों को मैं तुच्छ समझता हूं परन्तु अपना अन्याय समझता हूं। मैं इतना पापी नहीं हूं कि प्रजा की सम्पत्ति लूटूं और नर-हत्या करूं। मेरा दोष ने मुझे पापी बना दिया था। क्षमा करो कात्यायन—

कात्यायन—(कांपते हुए स्वर से) नन्द ! महाराज ! मैंने क्षमा कर दिया।

चाणक्य—खबरदार कात्यायन – क्षमा नहीं है। इस पृथ्वी पर कोई किसी को क्षमा नहीं करता और न क्षमा कर सकता है। हृदय के भीतर जो यंत्रणा[1] की भट्टी धधक[2] रही है वह क्या तुम्हारी आंखों के दो बूंद आंसुओं से ठंडी हो जाएगी ? यह नहीं हो सकता। सारी क्षमा मौखिक[3] होती है। जिस प्रकार अनुताप[4] मौखिक होता है: क्षमा भी मौखिक होती है। मैंने कभी नहीं देखा कि किसी ने दण्ड को सामने न देखते हुए अनुताप किया हो। मैंने कभी नहीं देखा कि कभी फटा हुआ मन क्षमा से ठीक पूर्व की भांति जुड़ गया हो। यह हो नहीं सकता।

कात्यायन—किन्तु—नन्द बालक है।

चाणक्य—जो बालक है उसे बालक ही की तरह रहना उचित है। बालक यदि बिना जाने आग में हाथ दे दे तो हाथ जल जाएगा। अग्नि अपना काम करने में आगा पीछा नहीं देखती।

---

१ यंत्रणा, शोक, कष्ट, संताप। २ धधक रही है, जल रही है। ३ मौखिक, मुख से। ४ अनुताप, पश्चाताप।

कात्यायन—तथापि नन्द बालक—

चाणक्य—खड्ग उठाओ कात्यायन, तुमको ही अपने हाथ से इसका वध करना होगा।

कात्यायन—मुझको !

चाणक्य—हां तुमको। पुत्र हत्या का बदला लो। कात्यायन, याद करो अपने उन्हीं सात पुत्रों की शीर्ण[1] पाण्डुमूर्ति[2], उनका वही क्षीण स्वर से अन्न के लिए हाहाकार, उनकी निष्प्रभ[3] दृष्टि और फिर उनका संज्ञा-हीन[4] ठण्डा और कठोर हो जाना। इसके बाद उनके निष्पन्द[5] निर्निमेष[6] नेत्रद्वय[7] के ऊपर मृत्यु का कराल[8] मुद्राङ्कण[9]—भावना करो कि वही मृत्यु तुम अपने सामने देख रहे हो। तुम उन के पिता हो, तो भी देख रहे हो। कात्यायन, अपने हाथ से उनका बदला लो।

(कात्यायन ने तलवार ले ली)

चाणक्य— अब विलम्ब का क्या प्रयोजन है ? सिपाहियो, इसे यूपस्तम्भ से बांध दो।

(सिपाहियों ने नन्द को बांध दिया)

(चाणक्य—तो भूतपूर्व महाराज ! कात्यायन)

(कात्यायन खड्ग लिए यूप-काष्ठ के निकट आ जाता है)

१शीर्ण, मुर्झाई हुई। २ पाण्डु, सफेद। ३ निष्प्रभ, तेजोहीन। ४ संज्ञा हीन, अचेत। ५ निष्पन्द, निश्चल। ६निर्निमेष, खुली हुई। ७नेत्र-द्वय दो नेत्र। ८ कराल, भयानक। ९ मुद्राङ्कण, मृत्यु की मोहर।

चाणक्य—भूतपूर्व महाराज नन्द ! यह ब्राह्मण का काम नहीं है किन्तु क्या किया जाय आज इसका प्रयोजन आ पड़ा है। अब ब्राह्मण की [illegible] नहीं रही। इच्छा होती है कि [illegible] चन्द्रगुप्त की भांति [illegible] आश्रय कर दूं कपिल की भांति [illegible] का विध्वंस कर दूं परन्तु कलियुग में [illegible] के लिए खड्ग की सहायता लेनी पड़ी [illegible] कलियुग में भी [illegible] कात्यायन से) वध करो। [illegible] आओ! भूत-पूर्व महाराज! तुम्हारे [illegible] इन बातों ने दिया करने वाला कोई नहीं [illegible] निर्मूल कर दिया गया। (नन्द प्रार्थना करता है।)

चाणक्य—अब वध करो। (कात्यायन ने तलवार उठाई)

जल्दी से चन्द्रकेतु का प्रवेश।

चन्द्रकेतु—सावधान ! तलवार नीचे करो ब्राह्मण !

चाणक्य—क्यों चन्द्रकेतु ?

चन्द्रकेतु—राजाज्ञा।

(कात्यायन ने तलवार नीचे कर ली)

चाणक्य—इसका अर्थ क्या है चन्द्रकेतु।

चन्द्रकेतु—यह लीजिए महाराज, चन्द्रगुप्त का क्षमा-पत्र। महाराज ने नन्द को छोड़ दिया है।

चाणक्य—महाराज चन्द्रगुप्त की आज्ञा। समझा, किन्तु यह आज्ञा मेरे लिए नहीं है। वध करो—

चन्द्रकेतु—किन्तु गुरुदेव, यह राजाज्ञा है।

चाणक्य—यह ब्राह्मण की आज्ञा है। वध करो कात्यायन।

चन्द्रकेतु—तो महाराज स्वयं आवें ? उनके आने के पहिले हम वध नहीं करने देंगे। राजाज्ञा का पालन करेंगे। सिपाहियो हट कर खड़े होओ।

चाणक्य—कदापि नहीं— यहीं खड़े रहो।

चन्द्रकेतु—वीरवल ?

(सेनाध्यक्ष-वीरवल और पांच सैनिकों का प्रवेश।)

चन्द्रकेतु—सैनिको, महाराज के आगमन पर्य्यन्त वन्द्य की रक्षा करो। वीरवल, महाराज को सम्वाद[1] दो।

(वीरवल का प्रस्थान)

चाणक्य—कात्यायन ! खड्ग लिए स्यांग सा क्या देख रहे हो मानो मिट्टी के पुतले हो। लाओ खड्ग मुझे दो। (आगे बढ़ते हैं

चन्द्रकेतु—(सामने जाकर, घुटने टेक कर, तलवार से रास्ता रोक कर। ब्राह्मण के सम्मुख नतजानु[2] होता हूं, किन्तु राजाज्ञा पालन करूंगा।

चाणक्य—वध करो, कात्यायन !

कात्यायन ने ज्योंही तलवार उठाई, त्योंही चन्द्रकेतु ने उसको राजाज्ञा-पत्र दिखा कर कहाः—

चन्द्रकेतु—राजाज्ञा ! (कात्यायन ने तलवार नीचे करली)

चाणक्य—कोई चिन्ता नहीं है कात्यायन ! जो ब्राह्मण

१ सम्वाद, समाचार। २ नतजानु होना है, गोड़े टेकना है।

चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर बिठा सकता है वह उस को सिंहासन के नीचे भी उतार सकता है।—वध करो।

(कात्यायन फिर तलवार उठाना चाहता है।)

चन्द्रकेतु—सावधान ! यदि इसके लिये ब्राह्मण हत्या भी होगी तो मैं आगा पीछा न करूंगा।

(मन्दिर के भीतर से मुरा का प्रवेश।)

मुरा—और यदि नारी-हत्या हो तो ? (कात्यायन और चन्द्रकेतु के मध्य में आ कर खड़ी हो जाती है।)

चन्द्रकेतु—(स्तम्भित होकर) माता आप हैं ?

मुरा—हां मैं हूं, मेरी आज्ञा है—वध करो।

चन्द्रकेतु—माता आप नन्द को क्षमा कर दीजिये।

मुरा—(व्यंग से हँस कर) क्षमा नहीं है। मैं क्षमा नहीं कर सकती—मैं क्षमा करना नहीं जानती। क्योंकि मैं शूद्राणी हूँ। क्षमा ब्राह्मण का धर्म है शूद्र का नहीं।

चन्द्रकेतु—क्षमा मनुष्य का धर्म है—केवल ब्राह्मण का ही नहीं है। क्षमा करने से जो अपार सुख होता है, उस का भोग करने का क्या केवल ब्राह्मण ही को अधिकार है? यह क्षमा स्वर्ग से भागीरथी[1] की पवित्र जलधारा की भांति इस संसार में उतर आई है। सब को ही इस पुण्यतरंग[2] में स्नान कर के पवित्र होने का अधिकार है। क्या ईश्वर की क्षमा शरीरधारी होकर इस मृत्युलोक में नहीं उतर आई है ? राम

---

१ भागीरथी, गंगा। २ तरङ्ग, लहर।

में यही क्षमा स्वास्थ्य[1] रूपिणी होकर आती है और हमारी रक्षा करती है। शोक में यही क्षमा विस्मृति लेकर आती है, दारिद्रय को यह क्षमा सहिष्णुता[2] देकर घेरे रहती है। माता यदि शैशव में सन्तान के सैकड़ों अपराधों को क्षमा न करे तो क्या सन्तान बच सकती है ? माता क्षमा करो मैं घुटने टेककर क्षमा मांगता हूं (घुटने टेक कर)।

मुरा—चन्द्रकेतु, क्या तुम्हीं अकेले क्षमा मांग रहे हो ? मेरे प्राण इस पञ्जर के द्वार को भेद कर, बाहर निकल कर और पैर पकड़ कर क्या यही भिक्षा नहीं मांग रहे ?—नन्द को इस बन्दी अवस्था में देखती हूं, उसके म्लान[3] अधोमुख को देख रही हूं, और आंसू उमड़ कर मेरे दृष्टिपथ[4] को नहीं रुद्ध कर रहे हैं ! नन्दशूद्राणी का दूध क्या क्षत्रियाणी के स्नेह से कम सफेद होता है ! नहीं मैं क्षमा नहीं करूंगी। मैं शूद्राणी हूं—मैं गणिका हूं।—वध करो।

कात्यायन की तलवार का वार हो गया, नन्द की देह से उसका मस्तक अलग हो गया।

(द्विजेन्द्रलाल राय)

---

१ स्वास्थ्य-रूपिणी, तन्दुरुस्ती के रूप में। २ सहिष्णुता, सहन शीलता ३ म्लान, कुम्हलाये हुए। ४ दृष्टिपथ, अवलोकन मार्ग। ५ रुद्ध कर, रोककर।

पद्य

विद्या

विद्या पढ़िये चित्त दे, विद्या से धन धाम[1]।
गौरवता जग में लहै[2], सुख कीरति[3] अरु नाम॥

२

सुख चाहे विद्या पढ़े, विद्या है सुख हेतु।
भव सागर[4] के तरन को, विद्या है दृढ़ सेतु[5]।

३

विद्या-धन सम धन नहीं जग में कहत सुजान[6]।
विद्या ही से मनुज[7] लघु, होवे भूप-समान[8]॥

४

द्रव्यवान अरु[9] भूमिपति, लहैं मान निज गांव[10]।
देखो विद्यावान नर, मान लहै सब ठांव॥

५

चोर न चोरी कर सके, नहीं नृपति के साथ।
बन्धु भाग नहिं ले सके, विद्या धन निर्बाध[11]॥

६

लघु जनहू संसार में, गाये जात सुजान।
विद्या से जहं तहं सदा, पावत हैं सम्मान॥

७

अनायास[12] जो धन चहै, सब तज विद्या सीख।
नहीं दीन ह्वै[13] जगत में, मांगत फिरिहै भीख॥

---

१ धाम, गृह। २ लहै, पावे। ३ कीरति, कीर्ति। ४ भव-सागर संसार समुद्र। ५ सेतु, पुल। ६ सुजान, बुद्धिमान। ७ मनुज, मनुष्य ८ भूप-समान राजा के तुल्य। ९ अरु और। १० ठांव स्थान। ११ निर्बाध बेखटका। १२ अनायास बिना परिश्रम। १३ ह्वै, होकर।

विद्या

विद्या पढ़िये चित्त दे, विद्या से धन धाम[१]।
गौरवता जग में लहै[२], सुख कीरति[३] अरु नाम ॥

२

सुख चाहै विद्या पढ़े, विद्या है सुख हेतु।
भव सागर[४] के तरन को, विद्या है दृढ़ सेतु[५]।

३

विद्या-धन सम धन नहीं, जग में कहत सुजान[६]।
विद्या ही से मनुज[७] लघु, होवे भूप-समान[८] ॥

४

द्रव्यवान अरु[९] भूमिपति, लहैं मान निज गांव[१०]।
देखो विद्यावान नर, मान लहै सब ठांव ॥

५

चोर न चोरी कर सके, नहीं नृपति के साथ।
बन्धु भाग नहिं ले सकें, विद्या धन निर्बाध[११] ॥

६

लघु जनहू संसार में, गाये जात सुजान।
विद्या से जहं तहं सदा, पावत हैं सम्मान ॥

७

अनायास[१२] जो धन चहै, सब तज विद्या सीख।
नहीं दीन ह्वै[१३] जगत में, मांगत फिरिहै भीख ॥

---

१ धाम, गृह। २ लहै, पावे। ३ कीरति, कीर्ति। ४ भव-सागर संसार समुद्र। ५ सेतु, पुल। ६ सुजान, बुद्धिमान। ७ मनुज, मनुष्य ८ भूप-समान राजा के तुल्य। ९ अरु और। १० ठांव स्थान। ११ निर्बाध बेखटका। १२अनायास बिना परिश्रम। १३ ह्वै, होकर।

८

विद्या ही से पाइये, बड़े बड़े अधिकार।
लोक और परलोक में, सब सुख यह निर्धार॥

९

भाग हीन नर को परम, आश्रय विद्या जान।
विद्या से संसार में, गुरुपद लहैं सुजान॥

१०

युवा वृद्ध वय में मनुज, सुख चाहे अधिकाय।
विद्या धन संचय करै, बालकपन से जाय॥

कबीर

जन्म-सम्वत् १४१८, मृत्यु-अनिश्चित

महाराज युधिष्ठिर को भीष्म का उपदेश !

१

भारत युद्ध होइ जब बीता । भयो युधिष्ठिर अतिभयभीता ॥
कुल-कुल हत्या मोते भई । धों[1] अब कैसी करिहै दई[2] ॥

२

करौं तपस्या पाप निवारौं । राज छत्र नाहीं शिर धारौं ॥
लोगन तेहि बहु विधि समझायो । पै तिहि मन सन्तोष न आयो ॥

३

तब हरि कह्यो टेक परिहारो[3] । भीष्म पितामह कहँ सु करो ॥
हरि पाण्डव रण-भूमि सिधाए । भीषम देखि बहुत सुख पाए ॥

४

हरिकह्योराजन कहत धर्मसुत । कहत हते[4] भये भ्रात भ्रातसुत ॥
गुरु हत्या मोते है आई । कहो सु छूटे कौन उपाई ॥

५

राज धर्म भीषम तब गायो । दान आपदा मच्छि[5] सुनायो ॥
पै नृप को सन्देह न गयो । तब भीषम नृप सों पुनि कह्यो ॥

६

धर्मपुत्र तू देख विचार । कारण करनहार करतार[6] ॥
नर के किये कछू नहिं होई । करता हरता आपहि सोई ॥

७

ताको सुमिरि राज्य तुम करो । अहङ्कार चित ते परिहरो ॥
अहङ्कार किये लागत पाप । सूर स्याम[7] भजि मिटे सन्ताप ॥

सूरदास
सम्वत् १४८३—१५६३

---

१ धों, न जाने । २ दई, दैवी ३ टेक परिहारो, हठ छोड़ो । ४ हते भये, मारे गये । ५ मोच्छ, मोक्ष । ६ करतार, ईश्वर । ७ स्याम, कृष्ण

वशिष्ट जी का भरत को उपदेश ॥

दो०–सुनहु भरत भावी[1] प्रबल, विलखि[2] कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ॥

अस[3] विचारि केहि[4] दीजे दोषू।
व्यर्थ काहि पर कीजे रोषू[5]॥
तात विचार करहु मन माहीं।
शोच योग दशरथ नृप नाहीं॥
शोचिय विप्र जो वेद विहीना।
तजि निज धर्म विषय लवलीना[6]॥
शोचिय नृपति जो नीति न जाना।
जेहि न प्रजा प्रिय प्राण समाना।
शोचिय वैश्य कृपण धनवानू।
जो न अतिथि शिव भक्ति सुजानू॥
शोचिय शूद्र विप्र अपमानी।
मुखर[7] मान-प्रिय ज्ञान-गुमानी॥
शोचिय पुनि पति-वंचक[8] नारी।
कुटिल कलह-प्रिय इच्छाचारी॥
शोचिय बटु निज व्रत परिहरई।
जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई॥

---

१ भावी, दैव, होनहार। २ विलखि, व्याकुल होकर। ३ अस, ।·४·केहि, किस ५ रोषू, रोष, क्रोध । ६ लवलीना, लीन। , बहुत बोलने वाला।·८·पति-वञ्चक, पति को ठगने वाली। ायसु आज्ञा।

दो०-शोचिय गृही जो मोहवश, करै कर्म पथ त्याग।
शोचिय यति प्रपञ्च-रत[1] विगत विवेक विराग॥

वैखानस[2] सोइ शोचन योगू।
तप विहाय जेहि भावै भोगू॥
शोचिय पिशुन अकारण क्रोधी।
जननि जनक गुरु बन्धु विरोधी॥
सब विधि शोचिय पर अपकारी।
निज तनु पोषक निर्दय भारी॥
शोचनीय नहिं कौशल राऊ[3]।
भुवन चारि दश[4] प्रगट प्रभाऊ॥
भयहु[5] न अहइ[6] न होनहिहारा[7]।
भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥
विधि हरिहर सुरपति दिशिनाथा[8]।
बरनहिं सब दशरथ गुनगाथा॥

दो०-कहहु तात केहि भांति कोई, करहि बड़ाई तासु।
राम लखन तुम शत्रुघन, सरिस[9] सुअन शुचि जासु॥

सब प्रकार भूपति बड़ भागी।
बाद विषाद करिय तेहि लागी[10]॥
यह सुनि समुझि शोक परिहरहू।
सिर धरि राज रजायसु[11] करहू॥

---

१ प्रपञ्च-रत, पाखण्डी। २ वैखानस, वानप्रस्थी। ३ कौशल-राऊ, कोशलपति। ४ चारि दश, चौदह। ५ भयेहु, हुआ है। ६ अहइ, है। ७ होनहिहारा, होगा। ८ दिशिनाथा, दिक्पाल। ९ सरिस, सदृश। १० तेहिलागी, उसके निमित्त। ११ रजायसु, राज-आज्ञा।

राय राज पद तुम कहं दीन्हा।
पिता वचन फुर[1] चाहिय कीन्हा॥
तजे राम जेहि वचनहिं लागी।
तनु परिहरेउ राम विरहागी[2]॥
नृपहि वचन प्रिय नहिं प्रिय प्राणा।
करहु तात प्रिय वचन प्रमाणा॥
करहु सीस धरि भूप[3] रजाई।
है तुम कहं सब भांति भलाई॥
परशुराम पितु आज्ञा राखी।
मारी मातु[4] लोक सब साखी॥
तनय ययातिहि यौवन[5] दयऊ।
पितु आज्ञा अघ अयश[6] न भयऊ॥
दो०—अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु बैन[7]।
ते भाजन सुख सुयश के, वसहिं अमर पति ऐन॥
अवशि नरेश वचन फुर करहू।
पालहु प्रजा शोक परिहरहू॥

---

१ फुर, पूर्ण । २ विरहागी, विरहाग्नि । ३ भूप-रजाई राजाज्ञा । ४ मारी मातु, माता को मार दिया । (जमदग्नि को अपनी स्त्री मेनका के आचार पर कुछ सन्देह हुआ। इस लिए उसने अपने पुत्र परशुराम को उसे मारने की आज्ञा दी। परशुराम ने झट माता का सिर काट दिया) ५ यौवन, जवानी। (शुक्राचार्य के शाप से ययाति वृद्ध होगए थे। उनके कनिष्ट पुत्र पुरु ने उन्हें अपनी आयु देकर फिर युवा कर दिया था)। ६ अघ, पाप। ७ बैन आज्ञा।

भरत जी की भ्रातृ-भक्ति ।

सो०-भरत कमल कर जोरि, धर्म धुरन्धर धीर धरि।
बचन अमिय[1] जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहिं॥

मोहि उपदेश दीन्हँ गुरु नीका[2] ।
प्रजा सचिव सम्मत सबही का॥

मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा।
अवशि सीस धरि चाहिय कीन्हा॥

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी।
सुनि मन मुदित करिय भलजानी।

उचित कि अनुचित किए बिचारू।
धर्म जाइ सिर पातक भारू॥

तुम तो देहु सरल सिख सोई।
जो आचरत मोर हित होई॥

यद्यपि यह समुझत हौं नीके।
तदपि होत परितोष न जीके[3] ॥

अब तुम बिनय मोर सुन लेहू।
मोहि अनुहरत[4] सिखावन देहू॥

उत्तर देउँ छमब अपराधू।
दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥

१ अमिय अमृत। २ नीका अच्छा। ३ जीके, मन। [illegible]
के। ४ अनुहरत, देखकर।

राय राज पद तुम कहं दीन्हा।
पिता वचन फुर[1] चाहिय कीन्हा॥
तजे राम जेहि वचनहिं लागी।
तनु परिहरेउ राम बिरहागी[2]॥
नृपहि वचन प्रिय नहिं प्रिय प्राणा।
करहु तात प्रिय वचन प्रमाणा॥
करहु सीस धरि भूप[3] रजाई।
है तुम कहं सब भांति भलाई॥
परशुराम पितु आज्ञा राखी।
मारी मातु[4] लोक सब साखी॥
तनय ययातिहि यौवन[5] दयऊ।
पितु आज्ञा अघ अयश[6] न भयऊ॥
दो०—अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु बैन[7]।
ते भाजन सुख सुयश के, बसहि अमर पति ऐन॥
अवशि नरेश वचन फुर करहू।
पालहु प्रजा शोक परिहरहू॥

---

१ फुर, पूर्ण । २ बिरहागी, बिरहाग्नि । ३ भूप-रजाई राजाज्ञा । ४ मारी मातु, माता को मार दिया। (जमदग्नि को अपनी स्त्री मेनका के आचार पर कुछ सन्देह हुआ। इस लिए उसने अपने पुत्र परशुराम को उसे मारने की आज्ञा दी। परशुराम ने झट माता का सिर काट दिया) ५ यौवन, जवानी। (शुक्राचार्य के शाप से ययाति वृद्ध होगए थे। उनके कनिष्ट पुत्र पुरु ने उन्हें अपनी आयु देकर फिर युवा कर दिया था)। ६ अघ, पाप। ७ बैन आज्ञा।

राय राज पद तुम कहं दीन्हा ।
पिता वचन फुर[1] चाहिय कीन्हा ॥
तजे राम जेहि वचनहिं लागी ।
तनु परिहरेउ राम बिरहागी[2] ॥
नृपहि वचन प्रिय नहिं प्रिय प्राणा ।
करहु तात प्रिय वचन प्रमाणा ॥
करहु सीस धरि भूप[3] रजाई ।
है तुम कहं सब भांति भलाई ॥
परशुराम पितु आज्ञा राखी ।
मारी मातु[4] लोक सब साखी ॥
तनय ययातिहि यौवन[5] दयऊ ।
पितु आज्ञा अध अयश[6] न भयऊ ॥
दो०—अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु बैन[7] ।
ते भाजन सुख सुयश के, बसहिं अमर पति ऐन ॥
अवशि नरेश वचन फुर करहू ।
पालहु प्रजा शोक परिहरहू ॥

---

१ फुर, पूर्ण । २ विरहागी, विरहाग्नि । ३ भूप रजाई राजाज्ञा । ४ मारी मातु, माता को मार दिया (जमदग्नि को अपनी स्त्री मेनका के आचार पर कुछ सन्देह हुआ । इस लिए उसने अपने पुत्र परशुराम को उसे मारने को आज्ञा दी । परशुराम ने झट माता का सिर काट दिया) ५ यौवन, जवानी । (शुक्राचार्य के शाप से ययाति वृद्ध होगए थे । उनके कनिष्ट पुत्र पुरु ने उन्हें अपनी आयु देकर फिर युवा कर दिया था) । ६ अध, पाप । ७ बैन आज्ञा ।

राय राज पद तुम कहं दीन्हा।
पिता वचन फुर[1] चाहिय कीन्हा ॥
तजे राम जेहि वचनहिं लागी।
तनु परिहरेउ राम बिरहागी[2] ॥
नृपहि वचन प्रिय नहिं प्रिय प्राणा।
करहु तात प्रिय वचन प्रमाणा ॥
करहु सीस धरि भूप[3] रजाई।
है तुम कहं सब भांति भलाई ॥
परशुराम पितु आज्ञा राखी।
मारी मातु[4] लोक सब साखी ॥
तनय ययातिहि यौवन[5] दयऊ।
पितु आज्ञा अघ अयश[6] न भयऊ ॥

दो०—अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु वैन[7]।
ते भाजन सुख सुयश के, बसहिं अमर पति ऐन ॥

अवशि नरेश वचन फुर करहू।
पालहु प्रजा शोक परिहरहू ॥

---

१ फुर, पूर्ण । २ बिरहागी, बिरहाग्नि । ३ भूप-रजाई राजाज्ञा । ४ मारी मातु, माता को मार दिया। (जमदग्नि को अपनी स्त्री मेनका के आचार पर कुछ सन्देह हुआ। इस लिए उसने अपने पुत्र परशुराम को उसे मारने को आज्ञा दी। परशुराम ने झट माता का सिर काट दिया) ५ यौवन, जवानी। (शुक्राचार्य के शाप से ययाति वृद्ध होगए थे। उनके कनिष्ट पुत्र पुरु ने उन्हें अपनी आयु देकर फिर युवा कर दिया था)। ६ अघ, पाप। ७ वैन आज्ञा।

भरत जी की भ्रातृ-भक्ति

के ।
धीर धरि।

सो०—भरत कमल कर जोरि, धर्म धुरन्धर उत्तर सर्वाहि ॥
वचन अमिय[1] जनु बोरि, देत उचित उ

मोहि उपदेश दीन्हँ गुरु नीका[2] । का ॥
प्रजा सचिव सम्मत सबही

मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा । कीन्हा ॥
अवशि सीस धरि चाहिय

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी । जानी ।
सुनि मन मुदित करिय भल

उचित कि अनुचित किए विचारू । ॥
धर्म जाइ सिर पातक भारू

तुम तो देहु सरल सिख सोई । ॥
जो आचरत मोर हित होई

यद्यपि यह समुझत हौं नीके । ॥
तदपि होत परितोष न जी

अब तुम विनय मोर सुन लेहू । हू ॥
मोहिं अनुहरत[4] सिखावन

उत्तर देउँ छमब अपराधू । धू ॥
दुखित दोष गुन गनहिं न

१ अमिय, अमृत । २ नीका, अच्छा । ३ ...तक, पाप । जी के । ४ अनुहरत, देखकर ।

पितु सुरपुर सिय राम बन, करन कहहु मोहि राज।
यहि ते जानहुँ मोर हित कै आपन बड़[1] काज॥

हित हमार सियपति सेवकाई।
सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥

मैं अनुमान दीख मन माहीं।
आन[2] उपाय मोर हित नाहीं॥

शोक समाज राज केहि लेखे।
लखन राम सिय पद बिनु देखे॥

बादि[3] बसन बिनु भूषण भारू।
बादि बिरति[4] बिनु ब्रह्म बिचारू॥

सरुज शरीर बादि बहु भोगा।
बिनु हरि भक्ति जाय जप योगा॥

जाय जीव बिनु देह सुहाई।
बादि मोर सब बिनु रघुराई॥

जाउं राम पहं आयसु देहू।
एकहि अंक मोर हित एहू॥

दोहा—कैकेई सुत कुटिल मति राम बिमुख गत लाज।
तुम चाहत सुख मोह बस, मोहि से अधम के राज॥

कहौं सांच सब सुनि पतिआहू[5]।
चाहिय धर्मशील नरनाहू॥

---

१ बड़काज, बड़ा काम। २ आन, और। ३ बादि, वृथा। ४ बिरति, विराग। ५ पतिआहू, विश्वास करो।

भरत जी की भ्रातृ-भक्ति ।

सो०-भरत कमल कर जोरि, धर्म धुरन्धर धीर धरि।
वचन अमिय[1] जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहिं ॥

मोहि उपदेश दीन्हँ गुरु नीका[2] ।
प्रजा सचिव सम्मत सबही का ॥

मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा ।
अवशि सीस धरि चाहिय कीन्हा ॥

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी ।
सुनि मन मुदित करिय भलजानी ।

उचित कि अनुचित किए विचारू ।
धर्म जाइ सिर पातक भारू ॥

तुम तो देहु सरल सिख सोई ।
जो आचरत मोर हित होई ॥

यद्यपि यह समुझत हौं नीके ।
तदपि होत परितोष न जीके[3] ॥

अब तुम विनय मोर सुन लेहू ।
मोहिं अनुहरत[4] सिखावन देहू ॥

उत्तर देउँ छमब अपराधू ।
दुखित दोष गुन गनहिं न साधू ॥

---

१ अमिय, अमृत । २ नीका, अच्छा । ३ पातक, पाप । जीके, जी के । ४ अनुहरत, देखकर ।

पितु सुर-पुर सिय राम बन, करन कहहु मोहि राज।
यहि ते जानहुँ मोर हित कै आपन बड़[1] काज॥

हित हमार सियपति सेवकाई।
सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥

मैं अनुमान दीख मन माहीं।
आन[2] उपाय मोर हित नाहीं॥

शोक समाज राज केहि लेखे।
लखन राम सिय पद बिनु देखे॥

बादि[3] बसन बिनु भूषण भारू।
बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू॥

सरुज शरीर बादि बहु भोगा।
बिनु हरि भक्ति जाय सब योगा।

जाय जीव बिनु देह सुहाई।
बादि मोर सब बिनु रघुराई।

जाउं राम पहं आयसु देहू।
एकहि आंक मोर हित एहू।

दोहा—कैकेई सुअ कुटिल मति राम बिमुख गत लाज।
तुम चाहत सुख मोह बस, मोहि से अधम के राज।

कहहिं सांच सब सुनि पतिआहु[5]।
चाहिय धर्मशील नरनाहू।

१ बड़काज, बड़ा कार्य। २ आन, और। ३ बादि, वृथा।
४ विरति, विराग। ५ पतिआहु, विश्वास करें।

तुम सब कहहु कढ़ावन टीका।
रायं-राज सब ही कहं नीका॥
उतर देउं केहि विधि केहि केही।
कहहु सुखेन यथा रुचि जेही॥
मोहि कुमात समेत विहाई।
कहहु काहि को कीन्ह भलाई॥
मोहिं बिनुको सचराचर माहीं।
जेहिं सिय राम प्राण प्रिय नाहीं॥
परम हानि सब कहँ बड़ लाहू।
अदिन मोर नहिं दूषण काहू॥
संशय शील प्रेम वश अहहू।
सबै उचित सब जो कछु कहहू

दो०—राम मातु सुठि[2] सरल चित, मो पर प्रेम विशे
कहहिं स्वभाव सनेह वश, मोर दीनता दे

गुरु विवेक-सागर जग जाना।
जिनहिं विश्व कर बदरिसमाना[3]॥
मोकहं तिलक साज सज सोऊ।
भा विधि विमुख विमुख सब कोऊ॥
परिहरि[4] राम सीय जगमाहीं।
कोउ न कहहिं मोर मत नाहीं॥

---

१ बड़ लाहू, बड़ा लाभ। २ सुठि, अच्छा। ३ बदरिसमाना बेर के समान। ४ परिहरि, छोड़कर।

सो मैं सुनब सहब सुख मानी ।
अंतहु कीच तहां जहं पानी ॥

डर न मोहि जग कहहि कि पोचू[1] ।
परलोकहु कर नाहिं न सोचू ॥

एकै बसइ उर दुसह दवारी[2] ।
मोहि लगि भये सियराम दुखारी ॥

जीवन लाहु लखन भल पावा ।
सब तजि राम चरण मन लावा ॥

मोर जन्म रघुवर बन लागी ।
झूठ कहौं पछिताउ अभागी ॥

दो०—आपन दारुण दीनता, सबहि कहेउं समुझाय ।
देखे बिनु रघुबीर पद जिय की जरन[3] न जाय ॥

आन उपाय मोहि नहिं सूझा ।
को जिय की रघुवर बिनु बूझा ॥

एकै आंक इहै मन माहीं ।
प्रात काल चलिहौं प्रभु पाहीं ॥

यद्यपि मैं अनभल अपराधी ।
मोहि कारण भई सकल उपाधी ॥

तदपि शरणसन्मुख मोहि देखी ।
छमि सब करिहहिं कृपा विशेषी ॥

शील सकुच सुठि सरल सुभाऊ ।
कृपा सनेह सदन रघुराऊ ॥

---

१ पोचू, डरपोक । २ दवारी, आग । ३ जरन, जलन ।

तुम सब कहहु कढ़ावन टीका।
राय-राज सब ही कहं नीका॥
उतर देउं केहि विधि केहि केही।
कहहु सुखेन यथा रुचि जेही॥
मोहि कुमात समेत विहाई।
कहहु काहि को कीन्ह भलाई॥
मोहिं विनुको सचराचर माहीं।
जेहिं सिय राम प्राण प्रिय नाहीं॥
परम हानि सब कहँ बड़ लाहू।
अदिन मोर नहिं दूषण काहू॥
संशय शील प्रेम वश अहहू।
सबै उचित सब जो कछु कहहू

दो०—राम मातु सुठि[2] सरल चित, मो पर प्रेम विशेख।
कहहिं स्वभाव सनेह वश, मोर दीनता देख॥

गुरु विवेक-सागर जग जाना।
जिनहिं विश्व कर वदरिसमाना[3]॥
मोकहं तिलक साज सज सोऊ।
भा विधि विमुख विमुख सब कोऊ॥
परिहरि[4] राम सीय जगमाहीं।
कोउ न कहहिं मोर मत नाहीं॥

---

१ बड़ लाहू, बड़ा लाभ। २ सुठि, अच्छा। ३ बदरिसमाना बेर के समान। ४ परिहरि, छोड़कर।

सो मैं सुनब सहब सुख मानी।
अंतहु कीच तहां जहं पानी॥
डर न मोहि जग कहहिं कि पोचू[1]।
परलोकहु कर नाहिं न सोचू॥
एकै बसै उर दुसह दवारी[2]।
मोहि लगि भये सियाराम दुखारी॥
जीवन लाहु लखन भल पावा।
सब तजि राम चरण मन लावा॥
मोर जन्म रघुबर बन लागी।
झूठ कहां पछिताउं अभागी॥
दो०—आपन दारुण दीनता, सबहि कहेउं समुझाय।
देखे बिनु रघुबीर पद जिय की जरन[3] न जाय॥
आन उपाय मोहि नहिं सूझा।
को जिय की रघुबर बिनु बूझा॥
एकै आंक इहै मन माहीं।
प्रात काल चलिहौं प्रभु पाहीं॥
यद्यपि मैं अनभल अपराधी।
मोहि कारण भई सकल उपाधी॥
तदपि शरनसन्मुख मोहि देखी।
छमि सब करिहहिं कृपा विशेषी
शील सकुच सुठि सरल सुभाऊ।
कृपा सनेह सदन रघुराऊ॥

---

१. पोचू, डरपोक। २ दवारी, अग्नि। ३ जरन, जलन।

अरिहु अनभल कीन्ह न रामा।
मैं शिशु सेवक यद्यपि वामा ॥
तुम पै पांच मोर भल मानी।
आयसु आशिष देहु सुबानी ॥
जेहि सुनि विनय मोंहि जन[1] जानी।
आवहिं बहुरि राम रजधानी।
दो०—यद्यपि जन्म कुमात तें, मैं शठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहैं, मोंहि रघुवीर भरोस

गोस्वामि तुलसीदास।
सं० १६२१—१६८०

---

१ जन, दास

दोहे ।

१

जे गरीब पर हित करैं ते "रहीम" बड़ लोग ।
कहां सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई[1] योग ॥

२

यों "रहीम" यश होत है उपकारी के संग ।
बांटन वाले को लगे, ज्यों मिहँदी को रंग ॥

३

खीरा सिर से काटिये भरिये नमक बनाय ।
"रहिमन करुए[2] मुखन को चाहियत यही सजाय ॥

४

संपति संपति जानि के, सब को सब कोइ देय ।
दीनबंधु बिन दीन की को "रहीम" सुधि लेय ॥

५

अमी[3] पियावत मान बिन, "रहिमन" हम न सुहाय ।
प्रेम सहित मरिबो[4] भलो, जो विष देय बुलाय ॥

६

जो "रहिम" ओछे बढ़े, तो अति ही इतराय ।
प्यादा[5] से फर्ज़ी[6] भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥

---

१ मिताई, मित्रता । २ करुए, कड़ु । ३ अमी, अमृत । ४ मरिबो, मरना । ५ प्यादा, सिपाही । ६ फर्ज़ी, वज़ीर । (प्यादा और फर्ज़ी, शतरंज के खेल में)

७

"रहिमन" यों सुख होत है, बढ़त देख निज गोत[1]।
ज्यों बड़री[2] अँखियां निरखि, आंखिन को सुख होत ॥

८

'रहिमन' वह नर मर चुके, जो कहुं मांगन जाहिं।
उन ते पहिले वह मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥

९

"रहिमन" गुन[3] ते लेत हैं, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहुं ते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि ॥

१०

समय दशा कुल देख के, सबै करत सन्मान।
"रहिमन" दीन अनाथ को तुम विन को भगवान् ॥

१०

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग
चंदन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग ॥

१२

अमर वेलि बिन मूल की, प्रति पालत है ताहि।
"रहिमन" ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिये काहि ॥

१३

दीनहिं सब कहं लखत है, दीन लखे नहिं कोय।
जो रहीम दीनहिं लखत, दीन-बन्धु सम होय ॥

१४

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हूं को भयो बावन[4] अंगुर गात ॥

---

१ गोत, कुल। २ बड़री, बड़ी। ३ गुन रस्सी। ४ बावन, (बलि राजा से पृथ्वी दान लेने के लिए नारायण ने 'वामन' अवतार लिया था। वामन का शरीर छोटा था वही उक्त दोहे में ५२ अंगुल बताया गया है)

१५

अमृत ऐसे वचन में "रहिमन" रिस की गांस[1]।
जैसे मिसिरिहु में मिली निरस बांस की फांस॥

१६

ज्यों रहीम गति दीप की कुल कपूत गति सोय।
बारे[2] उजियारो लगै बढ़े[3] अंधेरो होय॥

१७

"रहिमन" चुप ह्वै बैठिये देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं बनत न लागिहै बेर॥

रहीम

सं० १६०६—१६१२

---

१ गांस, गांठ या तीर या बर्छी का फल। २ बारे लड़कपन में (जब जलाया जाय) ३ बढ़े-बड़ा होने पर और बुझने पर।

नीति के दोहे ।

(बिहारी सतसई से)

१

कोटि यतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहिं बीच
नल बल जल ऊंचा चढ़ै, अन्त नीच को नीच

२

ओछे बड़े न ह्वै सकैं,लगि सतरौंहैं बैन ।
दीरघ होंहि न नेकहू, फारि निहारे नैन॥

३

को कहि सके बड़ेन को, लखे बड़ी यों भूल।
दीन्हें दई गुलाब के, इन डारन वे फूल ॥

४

कर लै सूंघ सराहि के, सबै रहे गहि मौन।
गन्धी गन्ध गुलाब को, गंवई गाहक कौन॥

५

करि फुलेलको आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गन्धी मति अन्ध तू, अतर दिखावत काहि॥

६

कनक कनक तें सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है, यह पाये बौराय॥

७

बड़े न हूजे गुनन बिन, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनों गढ़ो न जाय॥

७

झूठा मीठे वचन कहि ऋण उधार ले जाय।
लेत परम सुख उपजै लैके दियो न जाय॥
लैके दियो न जाय ऊँच अरु नीच बतावै।
ऋण उधार की रीति मांगते मारन धावै॥
कह गिरिधर कविराय रहै जन मन मैं रूठा।
बहुत दिनां ह्वै जायं कहै तेरो कागज़ झूठा॥

८

बिना विचारे जो करै सो पीछे पछताय।
काम बिगारे आपना जग में होत हंसाय॥
जग में होत हंसाय चित्त में चैन न पावै।
खान पान सन्मान राग रंग मनहिं न भावै॥
कह गिरिधर कविराय दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माहिं कियो जो बिना विचारे॥

९

साँई अपने चित्त की भूल न कहिये कोय।
तब लग मन में राखिये जब लग कारज होय॥
जब लग कारज होय भूल कबहूं नहिं कहिये।
दुर्जन ताते[१] होय आप सीरे ह्वै[२] रहिये॥
कह गिरिधर कविराय बात चतुरन के तांई।
करतूती कह देत आप कहिये नहिं सांई॥

---

१ ताते होय, गरम हो, क्रोध, करे। २ सीरे ह्वै रहिये, ठंढे हो रहिये॥

७

झूठा मीठे वचन कहि ऋण उधार ले जाय।
लेत परम सुख उपजै लैके दियो न जाय॥
लैके दियो न जाय ऊंच अरु नीच बतावै।
ऋण उधार की रीति मांगते मारन धावै॥
कह गिरिधर कविराय रहै जन मन में रूठा।
बहुत दिनां है जायं कहै तेरो कागज़ झूठा॥

८

बिना विचारे जो करे सो पीछे पछताय।
काम बिगारे आपना जग में होत हंसाय॥
जग में होत हंसाय चित्त में चैन न पावे।
खान पान सम्मान राग रंग मनहिं न भावै॥
कह गिरिधर कविराय दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माहिं कियो जो बिना विचारे॥

९

साईं अपने चित्त की भूल न कहिये कोय।
तब लग मन में राखिये जब लग कारज होय॥
जब लग कारज होय भूल कबहूं नहिं कहिये।
दुर्जन तातो[1] होय आप सीरे[2] ह्वै रहिये॥
कह गिरिधर कविराय बात चतुरन के तांईं।
करतूती कह देत आप कहिये नहिं साईं॥

---

१ ताता होय, गरम हो, क्रोध, करे। २ सीरे ह्वै रहिये, ठंढे हो रहिये॥

७

झूठा मीठे वचन कहि ऋण उधार ले जाय।
लेत परम सुख उपजे लैके दियो न जाय॥
लैके दियो न जाय ऊँच अरु नीच बतावे।
ऋण उधार की रीति मांगत मारन धावे॥
कह गिरिधर कविराय रहे जन मन में रूठा।
बहुत दिनों हो जाय कहे तेरो कागज़ झूठा॥

८

बिना विचार जो करे सो पीछे पछताय।
काम बिगारे आपना जग में होत हँसाय॥
जग में होत हँसाय चित्त में चैन न पावे।
खान पान सन्मान राग रंग मनहिं न भावे॥
कह गिरिधर कविराय दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माहिं कियो जो बिना विचारे॥

९

साँई अपने चित्त की भूल न कहिये कोय।
तब लग मन में राखिये जब लग कारज होय॥
जब लग कारज होय भूल कबहूं नहिं कहिये।
दुर्जन तातो[1] होय आप सीरे ह्वै[2] रहिये॥
कह गिरिधर कविराय बात चतुरन के तांई।
करतूती कह देत आप कहिये नहिं सांई॥

१ तातो होय, गरम हो, क्रोध, करे। २ सीरे ह्वै रहिये, ठंडे हो रहिये॥

१०

नैया मेरी तनिक सी बोझी पाथर भार ।
चहुं दिसि अति भौंरे उठत केवट[1] है मतवार ॥
केवट है मतवार नाव मंझधारहि आनी ।
आंधी चलत उदण्ड तेहुं पर बरसै पानी ॥
कह गिरिधर कविराय नाथ हो तुमहिं खेवैया[2] ।
उटहि दया को डांड़ घाट पर आवै नैया ॥

११

उरझी नाव कुठौर में पड़ी भंवर बिच आय ।
दीनबन्धु अब तोहि बिन को करि सकै सहाय ।
को करि सकै सहाय बहे करिया[3] बिन नाउर[4] ॥
आंधी उठत प्रचण्ड देखि अति आयो ताउर[5] ॥
कह गिरिधर कविराय नाथ बिन कब केहि सुरझी ।
तातें हा हा करौं मोरि बिपदा में उरझी ॥

गिरिधर राय —

सन् १ १३ जन्म

---

१ केवट, नाविक । २ खेवैया, चलाने वाला । ३ करिया, पतवार ४ नाउर, नाव । ५ ताउर, मूर्छा ।

७

झूठा मीठे वचन कहि ऋण उधार ले जाय।
लेत परम सुख उपजे लैके दियो न जाय॥
लैके दियो न जाय ऊंच अरु नीच बतावे।
ऋण उधार की रीति मांगत मारन धावे॥
कह गिरिधर कविराय रहै जन मन में रूठा।
बहुत दिनां है जाय कहै तेरो कागज़ झूठा॥

८

बिना विचारे जो करै सो पीछे पछताय।
काम बिगारे आपना जग में होत हंसाय॥
जग में होत हंसाय चित्त में चैन न पावे।
खान पान सन्मान राग रंग मनहिं न भावे॥
कह गिरिधर कविराय दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माहिं कियो जो बिना विचारे॥

९

साईं अपने चित्त की भूल न कहिये कोय।
तब लग मन में राखिये जब लग कारज होय॥
जब लग कारज होय भूल कबहूं नहिं कहिये।
दुर्जन तातो[1] होय आप सीरे ह्वै[2] रहिये॥
कह गिरिधर कविराय बात चतुरन के तांईं।
करतूती कह देत आप कहिये नहिं साईं॥

---

१ तातो होय, गरम हो, क्रोध, करे। २ सीरे ह्वै रहिये, ठंडे हो रहिये॥

१०

नैया मेरी तनिक सी बोझी पाथर भार।
चहुं दिशि अति भौंरे उठत केवट[1] है मतवार॥
केवट है मतवार नाव मंझधारहि आनी।
आंधी चलत उदण्ड तेहुं पर बरसै पानी॥
कह गिरिधर कविराय नाथ हो तुमहिं खेवैया[2]।
उतरहि दया को डांड़ घाट पर आवै नैया॥

११

उरझी नाव कुठौर में पड़ी भंवर बिच आय।
दीनबन्धु अब तोहि बिन को करि सकै सहाय।
को करि सकै सहाय बहे करिया[3] बिन नाउर[4]॥
आंधी उठत प्रचण्ड देखि अति आयो ताउर[5]॥
कह गिरिधर कविराय नाथ बिन कव केहि सुरझी।
तांते हा हा करौं सोहि विपदा में उरझी॥

गिरिधर राय—

सन् १ १३ जन्म

---

१ केवट, नाविक। २ खेवैया, चलाने वाला। ३ करिया, पतवार
नाउर, नाव। ५ ताउर, मूर्छा।

जीवन गीत

१९०४

१

शोक भरे छन्दों में मुझसे,
कहो न "जीवन सपना है" ।
जो सोता है वह है मृतवत्,
जग का रंग न अपना है ॥

२

जीवन सत्य नहीं झूठा है,
चिता नहीं इसका अवसान ।
"तू मिट्टी, मिट्टी होवेगा"
उक्ति नहीं यह जीवनिदान ॥

I

Tell me not in mournful numbers:
Life is but an empty dream,
For the soul is dead that slumbers,
And things are not what they seem.

II

Life is real ! Life is earnest !
And the grave is not its goal.
Dust thou art, to Dust returnest
Was not spoken of the soul

३

भोग विलास नहीं, न दुःख है
        मानव-जीवन का परिणाम।
करना ही चाहिये नित्यप्रति
        अधिकाधिक उन्नति का काम।

४

गुण हैं अमित समय चञ्चल है।
        यद्यपि हृदय बहुत बलवान्।
तदपि ढोल समान बिलखता।
        चिता ओर कर रहा प्रयाण

III

Not enjoyment and not sorrow,
    Is our destined end or way,
But to act, that each to-morrow
    Find us farther than to-day.

IV

Art is long and time is fleeting,
    And our hearts, though stout and brave,
Still, like muffled drums, are beating,
    Funeral marches to the grave.

---

१ प्रयान, यात्रा।

५

जग की विस्तृत रण-स्थली[1] में,
जीवन के झगड़ों के बीच ।
नायक बन कर करो काम सब
पशुओं ऐसे बनो न नीच ॥

६

नहीं भविष्यत् पर पतिआवो[2],
मृतक भूत को जानो भूत ।
काम करो सब वर्तमान में,
सिर प्रभु, मन दृढ़ यह करतूत ॥

V

In the world's broad Field of battle,
In the bivouac of Life,
Be not like Dumb Driven cattle !
Be a hero in the strife.

VI

Trust no future howe'er pleasant
Let the dead past bury its dead
Act—act in the living present !
Heart within and god o'erhead !

१ रण-स्थली, युद्ध भूमि । २ पतिआवो, विश्वास करो ।

७

सज्जन-चरित सिखाते हम भी—
कर सकते हैं निज उज्ज्वल।
जग में जाते समय रेत पर,
छोड़ें चरण-चिन्ह निर्मल॥

८

चरण-चिन्ह ये देख कदाचित्,
उत्साहित होवें भाई।
भव-सागर की चट्टानों पर,
नौका जिनकी टकराई॥

· VII

Lives of great men all remind us
We can make our lives sublime,
And departing, leave behind us
Footprints on the sands of time.

VII

Footprints, that perhaps another,
Sailing o'er life's solemn main,
Aforlorn and shipwrecked brother,
Seeing shall take heart again.

९

हो सचेत श्रम करो सदा तुम,
चाहे जो कुछ हो परिणाम।
सदा उद्यमी होकर सीखो,
धीरज धरना करना काम॥
(पुरोहित लक्ष्मीनारायण-जी)

IX

Let us then be up and doing,
With a heart for any fate.
Still achieving, still pursuing
Learn to labour and to wait.
H. W. LONGELLOW.

चांद बीबी ।

१९१२

१

देश उत्तरी जीत पाल नृप नीति निराली ।
महा मुग़ल ने नींव राज की गहरी डाली ॥
फिर इच्छा यह चली और भी जय की जय से ।
बढ़ना है ज्यों लोभ अधिक धन के सञ्चय से ॥

२

तृष्णा ने कर दिया अन्ध अकबर के मन को ।
ठाना उसने उचित लूटना विधवा धन को ॥
राज लोभ से चढ़ी कुटिलता से इतराती ।
मुग़ल फौज की नदी यही तट ग्राम बहाती ॥

३

दक्षिण में उस समय महा अन्याय मचा था ।
दक्षिण-पति ने समररूप नरमेध रचा था ॥
लुटता था धन धान्य गांव ऊजड़ होते थे ।
अथाईयों[१] में बैठ श्वान-जम्बुक[२] रोते थे ॥

४

खोकर खेत किसान लड़ाई पर जाते थे ।
पर न लौट कर माल काटने को आते थे ॥
दुष्टों ने इस काल पुराना वैर निकाला ।
भाई का घर किसी बालि[३] ने मिल कर घाला[४] ४

---

१ अथाई, चबूतरा । २ श्वान-जम्बुक, कुत्ते और गीदड़ । बाली सुग्रीव का भाई (इसने अपने भाई सुग्रीव की स्त्री छीन कर पास रख ली थी) । ४ घाला नष्ट किया ।

५

एक मुकुट [१] ने मूंड़ हज़ारों ही कटवाये ।
कई कुलों के चिन्ह वृथा जग से मिटवाये ॥
दो को लड़ते देख तीसरी की बन आई ।
फिर वह भी मर मिटा लूट चौथे ने पाई ॥

६

जो लड़ते थे सो न राज के थे अधिकारी ।
धर्म मूल पर नहीं हुई थी हत्या सारी ॥
ब्रह्मा ने युवराज रचा था जिस को सच्चा ।
लिये काठ का खड्ग [२] खेलता था वह बच्चा ॥

७

बहुत समय तक रुकी न जब लोहू की धारा ।
मंत्री, सेवा, प्रजा-तीन ने किया किनारा ॥
राज उन्होंने दिया उसी को था जो स्वामी ।
प्रतिनिधि मानी गई चांद सुलताना नामी ॥

८

बीजापुर के राज-पुत्र की विधवा रानी ।
सुलताना थी बाल-भूप की बुआ [३] सयानी ॥
निज भाई का पुत्र पुत्र-सम पाल रही थी ।
राज-नीति से राज-बखेड़े टाल रही थी ॥

९

उसका यह अधिकार जिन्होंने उचित न जाना ।
ये वैरी से मिले समझ निज लाभ विराना ॥

---

१ मुकुट, ताज । २ खड्ग, तलवार ३ बुआ, पिता की बहिन ।

लख पर-घरकी फूट संत में पाय सहाई।
अहमदपुर पर मुगल-फ़ौज़ की हुई चढ़ाई॥

१०

अबला हो डर नहीं चाँद बीबी ने माना।
यान-भूप के लिये प्राण भी देना ठाना॥
सरदारों से कहा द्वेष आपस का त्यागो।
सोचो निज कर्त्तव्य देश-रक्षा हित जागो॥

११

तीन सुरङ्गें वहीं वैरियों ने खुदवाईं।
सुलताना ने तल-सुरङ्ग में दो मिटवाईं॥
उड़ी तीसरी दुर्ग भीत का भाग उड़ाती।
धड़की निज घर-फूट देख वीरों की छाती॥

१२

तब कर में तलवार लिये वीरों सी नङ्गी।
पहन पूरा झिलम साज सब साजे जङ्गी॥
घूंघट घाले घटा रूप सुलताना धाई।
थालों की बरसात भीत में से मचवाई॥

१३

सब लोहा चुक गया तोप की बाढ़ न चूकी।
तांबा फूंका गया गई फिर चांदी फूंकी॥
फिर तोपों ने बड़े चाव से फूंका सोना।
फिर रत्नों ने किया अन्त में रण अनहोना [१]॥

१४

वैरी ठहर न सके प्रबल बागी के आगे।
पल में घेरा उठा छोड़ कर जी सब भागे॥

---

१ अनहोना, जो कभी फिर न होगा।

जाग रात-भर आप भीत उसने जुड़वाई।
नारि-पौरुष देख लाज पुरुषों को आई॥

१५

जब दक्षिण की ओर सहायक सेना आई।
पहले से भी अधिक मुग़ल सेना घबराई॥
फिर मुराद ने लखा रसद दिन २ घटती है।
जय की आशा छोड़ फौज पीछे हटती है॥

१६

सब प्रकार से दीन समझ कर अपने मन में।
करली उसने सन्धि चांद बीबी से पल में॥
अकबर को यह हार बुढ़ापे में यों खटकी।
दक्षिण को वह चला बाट भूला मरघट की॥

१७

डाल दिया बुरहान पूर में उसने डेरा।
फिर से अहमद नगर दुर्ग सेना ने घेरा॥
इस अवसर पर भी न चाल निज चूके द्रोही
मुग़लों की भी बाट न हत्यारों ने जोही॥

१८

धन के बदले महा घोर अघ करने वाले।
बचे के भी प्राण सहज में हरने वाले॥
कई दुष्ट जा घुसे महल में सुलताना के।
धोके में ले लिये प्राण पल में अबला के॥

१९

जिस आशा से पाप किया था सरदारों ने।
पूरी की वह मुग़ल फौज की तलवारों ने॥

देश-द्रोह, नृप-घात, लूट, सब का फल पाया।
पाप-लदे मय कष्ट और परलोक नसाया॥

२०

भला बुरा कुछ नहीं जगत् का जिसने जाना।
जिस के कारन मरी अमर होकर सुलताना॥
किसी समय जो राज-कोश का स्वामी होता।
बन्दी बन सब छोड़ गया वह बालक रोता॥

२१

अकबर की यह जीत हुई पक्की फलदाई।
चौथेपन की शान्ति न उसने पलभर पाई॥
मरने तक वह रहा दुखी सुत की करनी से।
वैसा ही उठ गया अचानक इस धरनी से॥

श्री कामता प्रसाद गुरु।

———

शारद नदी।

१९१३

१

अशनि-पात भयानक गर्जना,
विषम वात झड़ी दिन रात की।
मिट गई दिन पावस के गये,
शरद शांत सुख-प्रद काल है॥

२

अनिल-सेचन को दिन एक मैं।
नगर से तटनी तट को गया॥
सरस रागमयी खग वृन्द की।
सुखद शीतल सुन्दर सांझ थी॥

३

गगन-मण्डल निर्मल नील था।
सुखद मारुत मन्द मनोज्ञ था।
कर रही कलनाद प्रवाहिनी,
मुदित मैं मन में अति ही हुआ॥

४

रजत के कण सी सित रेणुका,
बिछ रही सब ओर विलोक के।
थिर हुआ सिकता पर मैं वहीं,
दृग लगे जलधार निहारने॥

---

१ अशनिपात, वज्रपात। २ तटनीतट, नदीतट ३ खग, मनोज्ञ, मनोहर। ५ प्रवाहिनी, नदी। ६ रेणुका, रेत। ७ विल लकर।

५

सरित को लख के अति-दुर्बला,
परिमिता, अमला, शुचि शोभिता॥
सहित विस्मय मैं कहने लगा—
अयि तरङ्गिणि! है यह क्या बना॥

६

तरल तुङ्ग तरंग उछालती,
युगल[1] तीर खड़े तरु तोड़ती॥
उलटती तरणी[2] तन फोड़ती,
सभय नाविक को करती हुई॥

७

अमित वेगवती अति गर्विता,
गरजती तुम थी बरसात में॥
अब कहो वह गर्व कहां गया!
अतुल यौवन का मद क्या हुआ!

८

सलिल बीच प्रतिध्वनि भी हुई,
तुरत उत्तर यों मुझ को मिला—
विभव अस्थिर है, सब की दशा
न रहती जग में नित एक सी॥

श्री रामनरेश त्रिपाठी।

---

१ युगल, दोनों। तरणी, नाव।

सीतान्वेषण।

१९१५

१

धिक् हा! मुझको क्या बचाने गये, तुम ने यह भारी अनर्थ किया।
वह पर्णकुटी हुई प्रेत-कुटी, वन में अति साहस व्यर्थ किया॥
अथवा विधि-प्रेरित हो तुम ने, उपदेश न मन में मेरा लिया।
अब क्यों चुप हो बतला दो मुझे, वह शक्रप्रिया[1] -सी कहां है सिया॥

२

कुसुम-शयन छोड़ा प्रीति से मैथिली ने,
निज नियम निबाहा नीति से मैथिली ने।
डर रहित उसी से चूर्ण सा हो रहा है,
वह अनुज[2] मराली चाल-वाली कहां है?

३

जनक-नृप-सुता थी हो गई राम जाया,
फिर तृण-गृह में आ दुख कैसे उठाया।
मम विरह उसी ने आज कैसे सहा है?
वह विमल गुणों की जाल वाली कहां है?

४

सर निकट अकेली क्या गई है नहाने?
डर कर मुझ को ही या गई है बुलाने।

---

१ शक्र-प्रिया, इन्द्राणी। २ अनुज, छोटा भाई। ३ मराली चा[ल]
वाली, हंसी समान चलने वाली।

स्मरण कर उसे हा ! शोक होता महा है।
यह विधुरुचिशाली[1] भालवाली कहां है ?

५

राज्य गया छूटीं मातायें, पिता-दशा क्या हुई वहां !
अलग हुआ मैं हाय भरत से तो भी धाता रुष्ट रहा ॥
इसी लिए क्या विपत और यह उसने दी है अहा नई !
यता अनुज वह निज मधुपाली[2] वालों वाली कहां गई ॥
(पण्डित रामचरित उपाध्याय)

---

१ विधु-रुचि शाली, चन्द्र की चांदनी युत । २ मधुपाली, भ्रमरों का समूह ।

है सम्भव ही नहीं अमृत ऐसा तब पाओ,
दशा देख हो मुग्ध निज दशा पर शर्माओ ॥
छल का सुन कर नाम ही लोगों को सन्ताप था।
तब समझे थे सत्य को, झूठ घृणित था, पाप था ॥

(८)

अब तो है हर तरफ गर्म बाज़ार झूठ का,
करते होकर निडर लोग व्यवहार झूठ का।
चल निकला है यहाँ बहुत व्यापार झूठ का,
दुस्सह है हो रहा भूमि को भार झूठ का ॥
मिला स्वाद क्या जानिये लोगों को है झूठ में।
रखते कितने ही अधम झूठ ऊंट भर मूठ में ॥

(९)

कदम कदम पर क्रूर कुटिल बन दम देते हैं।
पय[1] मुख उर विष भरे भेद भी कम देते हैं।
छिड़क घाव पर नमक बतां मरहम देते हैं,
करते हैं फिर गर्व कि क्या दम हम देते हैं।
अपने इस दुष्कर्म पर लाज उन्हें आती नहीं।
इतना उर में दम्भ है पर फटती छाती नहीं ॥

(१०)

थकते ही हैं नहीं झूठ अपने गुण गाते।
किया क्षुद्र उपकार, सौगुणा उसे बताते।
सुन कर झूठी वाह वाह फूले न समाते,
चलते फिरते झूठ, झूठ ही पीते खाते ॥
चसका ऐसा झूठ का लगा नहीं है छूटता।
सुकृत-सम्पदा हाय! है झूठ लुटेरा लूटता ॥

---

१ पय, दूध।

(११)

वादा करते हुए न हरगिज़ मुंह मोड़ेंगे,
कह देंगे झट कि हम गगन-तारे तोड़ेंगे।
पर, ईश्वर विश्वास काम सारा थोपेंगे
घेरेंगे जो अधिक धूर्त मिलना छोड़ेंगे॥
अपनी भाषा में इसे कह लेते यह पोल है।
पर मम मति में पोतते[1] ये निज मुख पर तोल हैं॥

(१२)

कितने ही तो पेट झूठ ही से भरते हैं
लज्जित होते नहीं कुटिल करनी करते हैं।
लगा चुगली कर झूठ कान पर भरते हैं॥
बन्धु बन्धु बिगड़ परस्पर लड़ मरते हैं॥
अभियोगी[2] यदि यह कहीं न्यायालय द्वारा हुए।
तो फिर क्या है पूछना उनके पौबारा हुए॥

(१३)

क्या शिक्षित, क्या अपढ़ झूठ सब के मन भाया,
है बस यह दुर्दैव समय जो ऐसा आया।
हाय झूठ ने प्रेम और बन्धुत्व मिटाया,
किसको अपना कहें किसे अब कहें पराया॥
पक्का झूठा यदि न हो बच्चे की दुनियां नहीं।
कहते हैं सब लोग अब सच्चे की दुनियां नहीं॥

(१४)

सच कहने से लोग रुष्ट मन में होते हैं,
प्रकृति उग्र है, शील दूर है, हमलावर हैं।

---

१ पोतते हैं, मलते हैं। २ अभियोगी, मुद्दई।

पक्षपात से पूर्ण हृदय में झल्लाते हैं।
अवसर पाकर हिंस्र जन्तु से धर खाते हैं॥
जहां इस तरह से मनुज अनृत-प्रेम में शूर हों।
क्यों न प्रकृति-प्रिय कवि वहां यों झूठे मशहूर हों॥

(१५)

संभलो भारत-बन्धु अभी कुछ नहीं गया है,
बहुत लोग हैं अभी वचन की जिन्हें हया[1] है।
सत्य-पूर्ण है हृदय साथ ही साथ दया है,
चढ़ा न उन पर कभी झूठ का रङ्ग नया है॥
अभी तुम्हारे सामने वह उत्तम आदर्श हैं।
सत्य व्रत निर्वाह से पाते मन में हर्ष हैं॥

(२६)

गहो सत्य को मित्र कपट मिथ्या को त्यागो।
छल पैशाचिक कर्म समझ कर उस से भागो।
माया में मत फंसो मोह निद्रा को त्यागो,
जागो जागो बन्धु भला अब तो तुम जागो॥
हरिश्चन्द्र से स्वर्ग में देख तुम्हें सुख पा रहे।
उद्बोधन हैं कर रहे अश्रु बहाते जा रहे॥

'सनेही'

[1] हया, शर्म।

शिक्षा।

(१९१२)

१

सबसे प्रथम कर्तव्य है शिक्षा बढ़ाना देश में,
शिक्षा बिना ही पड़ रहे हैं आज हम सब क्लेश में।
शिक्षा बिना कोई कभी बनता नहीं सत्पात्र है,
शिक्षा बिना कल्याण की आशा दुराशा मात्र है॥

२

जबतक अविद्या का अँधेरा हम मिटावेंगे नहीं,
जबतक समुज्ज्वल ज्ञान का आलोक पावेंगे नहीं।
तब तक भटकना व्यर्थ है सुख सिद्धि के सन्धान[1] में,
पाए बिना पथ पहुँच सकता कौन इष्ट स्थान में?

३

ये देश जो हैं आज उन्नत और सब संसार से—
चौंका रहे हैं नित्य सब को नव-नवाविष्कार[2] से
सब ज्ञान के संचार से ही बढ़ सके हैं वे वहाँ,
विज्ञान-बल से ही गगन में चढ़ सके हैं वे वहाँ॥

४

"विद्या मधुर सहकार[3] करती सर्वदा कटु[4] निम्ब को,
विद्या सफल करती कलों से ताम्र[5] को प्रतिबिम्ब[6] को।

---

१ सन्धान में, खोज में। २ नव-नवाविष्कार से, नई [illegible]। ३ सहकार, आम। ४ कटु, कड़वा। ५ ताम्र को, ताम्बा [illegible] के द्वारा। ६ प्रतिबिम्ब को, छाया को (फोटोग्राफ)

भयकंर-भर्त्सना ।

१६१३

(महाराजा जसवन्तसिंह जब औरंगज़ेब की सेना से पराजित हो रण भूमि छोड़ घर पहुंचे, तब उनकी रानी "विन्दुमती" उन की भीरुता पर क्रोधित होकर ये वचन कहे)

१

है ना—नहीं नाथ नहीं कहूंगी ।
अनाथिनी हो कर ही रहूंगी,
होते कहीं जो तुम नाथ मेरे,
तो भागते क्या तुम पीठ फेरे !

२

यथार्थ ही क्या मुंह को छिपाए,
संग्राम से जो तुम भाग आए ।
धिक्कार है हा ! अब क्या करूं मैं,
रक्खा कहां मौत कि जो मरूं मैं ॥

३

हा ! पीठ वैरी दल को दिखा के,
त्यों हार माथे पर यों लिखा के ।
आये दिखाने मुंह हो यहां क्या ?
भला बनेगा तुमसे यहां क्या ?

४

परन्तु मैं हो कर वीर-बाला,
जो लोक में है करती उजाला ।
देखूं तुम्हारा मुंह आज कैसे,
सहूं कहो तो, यह लाज कैसे !

१५

विशाल वक्षःस्थल, दीर्घ भाल,
आजानु लम्बे युग बाहु जाल।
थे देखने ही भर को तुम्हारे,
ज्यों चित्र में अङ्कित अंग सारे॥

१६

था क्षत्रियों का वह उष्ण रक्त;
हुआ यहां लों अब है अशक्त।
वहा सके न जो विपक्षियों को—
दुराग्रही गो-धन-भक्षियों को॥

१७

दैवात् कभी शत्रु कुदृष्टि लावें,
सोत्साह मेरे हरणार्थ आवें।
तो क्या मुझे भी तुम छोड़ भागो,
आश्चर्य क्या जो मुँह मोड़ भागो॥

१८

विश्वास क्या भीत पलातकों का;
सुकर्म या धर्म-विघातकों का।
कर्तव्य से जो च्युत हो चुके हों;
क्या है, जिसे वे न डुबो चुके हों?॥

१९.

जाओ, यहां से तुम लौट जाओ,
तुम्हें यहां स्थान नहीं कि आओ।

वक्तव्य ।

ईश्वर की कृपा से हिन्दी भाषा का प्रचार दिनों दिन
रहा है। सभी प्रान्तों के स्कूल, कालिजों में भाषा का थोड़ा
प्रवेश होगया है। एतदर्थ पुस्तकों की आवश्यकता भी
ही साथ बढ़ रही है। संयुक्त तथा मध्य प्रदेश और
प्रान्तों में अच्छी २ पाठ्य पुस्तकें निकल भी रही हैं किन्तु
तक मुझे विदित है उन में कुछ न कुछ कमी अवश्य रह गई

कुछ ऐसी हैं जिनके पद्य भाग में केवल तुलसीदास
पुरातन कवियों के ही पद्य दिये हुए हैं—अन्य ऐसी हैं
व्रजभाषा के पद्यों के साथ खड़ी बोली की कविता को भी
स्थान तो दिया है, किन्तु गद्य भाग के चुनाव में विषय
रोचकता तथा उपयोगिता पर बहुत थोड़ा ध्यान रखा ग

पाठक गण स्वयं देखेंगे कि इन पुस्तकों में
त्रुटियों को पूर्ण करने का यथाशक्ति कितना यत्न किया ग

पद्य भाग में पुरातन कवियों के साथ आज क
प्रसिद्ध कवियों को भी यथोचित स्थान दिया हुआ है।

कवियों के कालानुसार कविताओं को रखा गया है
से कविता की भाषा तथा शैली में जो परिवर्तन कालक
होता रहा है उसका भी कुछ न कुछ पता लग जायगा।

गद्य भाग में कुछ पाश्चात्य और प्राच्य महापुरुषों के
चरित बड़े २ आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार और देश
अच्छी संस्थाओं का वर्णन तथा अन्य रोचक और शि
विषय दिये गये हैं।

मेरी इस सफलता में बहुत सा भाग अद्वितीय मासि
"सरस्वती" तथा कतिपय अन्य पत्र और महानुभाव
का है जिनका नाम पुस्तक में उचित स्थान पर दे दि
मैं इनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। लाहौर—१-११

विषय सूची ।

चित्र सूची ।